पुरुष राजमार्ग में चला जाता है तो मार्ग के किसी पदार्थ से सम्बन्ध नहीं रखता तैसे ही उस पुरुष का अभिमान किसी में नहीं फुरता। जिस पुरुष का चित्त अन्तर्मुख हुआ है वह सोवे अथवा बैठे, चले अथवा देखे उसे नगर और ग्राम सब महावनरूप भासता है और सब जगत् उसको आकाश-रूप भासता है। जिस पुरुष को आत्मा में प्रीति हुई है वह अन्तर्मुखी कहाता है और जिसका हृदय आत्मज्ञान से शीतल हुआ है उसको सब जगत् शीतलरूप भासता है। वह जब तक जीता है तब तक विगतज्वर होकर जीता है और जिसका हृदय तृष्णा से जलता है उसको सब जगत् दावाग्नि से तपता भासता है। हे रामजी! यह सब जगत् चित्त में स्थित है, जैसी भावना चित्त में होती है उसके अनुसार जगत् भासता है। स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, नदियाँ, आकाश, देश, काल जो कुछ जगत् है वह सबचित्त (अन्तःकरण) में है और वही बाहर विस्तार होकर भासता है। जैसे वट के बीज से वट फैल जाता है तैसे ही चित्त में जगत् का विस्तार होता है। बाहर जो सूर्य आदिक भासते हैं वह भी चित्त के भीतर स्थित हैं—जैसे फूल खिलता है उसके भीतर की सुगन्ध बाहर भासती है और वास्तव में न कुछ भीतर है न बाहर है जैसा किंचन होता है तैसा ही चैत्यता से फुरता है—तैसे ही वही सत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है। जगत् सब आत्मरूप है और न कोई सत्य है, न असत्य है, एक आत्मसत्ता ज्यों की त्यों स्थित है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको सदा ऐसे ही भासता है। हे रामजी! जिसके हृदय में शान्ति है उसको सब जगत् शान्ति रूप है और जिसका हृदय देहाभिमान में स्थित है सो नाश होता है और भय पाता है किसी ओर से उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती। वह स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियाँ देश, काल सबको प्रलयकाल की अग्निवत् जलता देखता है। जिसके हृदय में पाप होता है उसको सब जगत् तपता भासता है पर आत्मज्ञानी को शान्तरूप भासता है—जैसे अन्धे को सब जगत् तमरूप भासता है और नेत्रोंवाले को सब जगत् प्रकाशरूप भासता है। हे रामजी! जिस पुरुष को आत्मपद की प्रतीत हुई है और इन्द्रियों से कर्म भी करता है

तब ताप भी निवृत्त हो जाता है। जैसे शरत्काल के आये से कुहिरा नष्ट हो जाता है तैसे ही विचार किये से मननभाव नष्ट हो जाता है। विचारो कि मैं कौन हूँ, इन्द्रियाँ क्या हैं, जगत् क्या है और जन्म-मरण किसको कहते हैं ? इस विचार से जब तुम अपने स्वभाव में स्थित होगे तब तुमको हर्ष, शोक, क्रोध और राग-द्वेष चलायमान न कर सकेगा। जैसे वायु से पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे ही तुम अचल रहोगे। हे राजन् ! जब आत्मबोध होगा तब मन अपने मननभाव को त्याग देगा और तुम सन्ताप से रहित अपने स्वरूप को प्राप्त होगे। जैसे तरङ्गभाव मिटने से जल निर्मल होता है तैसे ही तुम अचल होगे और मनधर्म भी रहेगा परन्तु मध्य से अज्ञान नष्ट हो जावेगा और आत्मसत्ताभाव होगा। जैसे काल वही रहता है परन्तु ऋतु और हो जाती है तैसे ही मन वही होगा परन्तु स्वभाव और हो जावेगा। तेरे नौकर और प्रजा भी साधु हो जावेंगे और तेरी आज्ञा में चलेंगे और तुझको देखकर प्रसन्न होंगे। हे राजन् ! जब तुझको विवेकरूपी दीपक से आत्मारूपी मणि मिलेगा तब तेरी बड़ाई सुमेरु और समुद्र और आकाश से भी अधिक होगी। जब तुझको विवेक से आत्मतत्त्व का प्रकाश होगा तब तू संसार की तुच्छ वृत्ति में न डूबेगा। जैसे गोपद के जल में हाथी नहीं डूबता तैसे ही तू राग द्वेष में न डूबेगा। जिसको देह में अभिमान है और चित्त में वासना है और वह तुच्छ संसार की वृत्ति में डूबता है, इससे जितना अनात्मभाव दृश्य है उसका त्यागकर, पीछे जो शेष रहे सो परमतत्त्व आत्मा है। हे राजन् ! जो कुछ सत्य वस्तु है उसको हृदय में धरो और जो असत्य है उसको त्याग करो। जैसे जब तक कल्लर को सोनार धोता है तब तक सुवर्ण नहीं निकलता और जब सुवर्ण निकलता है तब धोने का त्याग करता है, तैसे ही तब तक आत्मविचार कर्तव्य है जब तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ। जब आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है तब विचार से प्रयोजन नहीं रहता। हे राजन् ! सबमें, सब प्रकार, सब काल, सब आत्मा की भावना करो अथवा जितना दृश्यभाव है सो सब त्याग करो तो जो शेष रहेगा सो तुमको भासि आवेगा। जब

तक सब दृश्य का त्याग न करोगे तब तक आत्मपद का लाभ न होगा। सर्व दृश्य के त्याग से आत्मपद भासेगा। हे राजन् ! जब किसी वस्तु के पाने का यत्न करता है तो और का त्यागकर उसी का यत्न करिये तो प्राप्त होता है तो आत्मतत्त्व अनन्य हुए बिना कैसे प्राप्त होगा। जब अपना सम्पूर्ण यत्न एक ही ओर लगाता है तब उस पद की प्राप्ति होती है। इससे आत्मपद के पाने के लिये सब दृश्य को त्यागकर सबके त्याग किये से जो शेष रहे सो परमपद है। हे राजन् ! सबके त्याग किये से जो सत्ता अधिष्ठान रहेगा सो तुझको आत्मभाव से प्राप्त होगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तान्तमाडवोपदेशोनाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार कहकर जब माण्डवमुनि अपने स्थान को गये तब सुरघ राजा एकान्त में बैठकर विचार करने लगा कि मैं कौन हूँ ? न मैं सुमेरु हूँ, न मेरा सुमेरु है, न मैं जगत् हूँ, न मेरा जगत् है, न मैं पृथ्वी हूँ, न मेरी पृथ्वी है, न मैं क्रान्तमण्डल हूँ और न मेरा क्रान्तमण्डल है, क्योंकि यह अपने भाव में स्थित है मेरे भाव से तो नहीं। जो मैं न होऊँ तो भी यह ज्यों का त्यों स्थित है, तो यह मेरे कैसे होवे और मैं इनका कैसे होऊँ ? न मैं नगर हूँ और न मेरा नगर है। हाथी, घोड़ा, मन्दिर, धन स्त्री पुत्रादिक जो कुछ पदार्थ हैं सो न मेरे हैं और न मैं इनका हूँ। इनमें आसक्त होना वृथा है, इनमें मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जितने भोगों के समूह हैं ये न मैं हूँ, और न ये मेरे हैं। नौकर, भृत्य और कलत्र सब अपने भाव से सिद्ध हैं, मेरा इनसे सम्बन्ध कुछ नहीं। न मैं राजा हूँ, न मेरा राज्य है। मैं एकाएकी शरीरमात्र हूँ और इनमें मैं ममत्व करता हूँ सो वृथा है। शरीर में जो मैं अहं करता हूँ सो भी व्यर्थ है, क्योंकि हाथ-पाँव आदिक का स्वरूप भिन्न है, न यह मैं हूँ और न ये मेरे हैं। इनमें मेरा शब्द कुछ नहीं। यह रक्त, मांस, हाड़ आदिकरूप है सो मैं नहीं। यह जड़ है और मैं चेतन हूँ, इनके साथ मेरा कैसे सम्बन्ध हो। जैसे जल का स्पर्श कमल को नहीं होता तैसे ही इनका स्पर्श मुझको नहीं। न मैं कर्मइन्द्रियाँ हूँ और न मेरी कर्म-

इन्द्रियाँ हैं । यह जड़ हैं, मैं चैतन्य हूँ । न मैं ज्ञानइन्द्रिय हूँ, न मेरी ज्ञान इन्द्रियाँ हैं । इनसे परे मन है सो भी मैं नहीं, क्योंकि यह जड़ है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब अनात्मरूप हैं । मेरा इनके साथ अविद्या का सम्बन्ध है । भ्रान्ति से मैं इनको अपना स्वरूप जानता था पर यह सब भूतों का कार्य है । इनके पीछे चेतन जीव है जो चेतन दृश्य को चेतनेवाला है सो चेतन चेतना भी मैं नहीं । इन सबमें शेष अचेत चिन्मात्रसत्ता मेरा स्वरूप है । बड़ा कल्याण हुआ जो मैंने अपना आप पाया । अब मैं जागा हूँ । बड़ा आश्चर्य है कि मैं वृथा देहादिक को अपना जानकर शोक और मोह को प्राप्त होता था । मैं तो एक निर्विकल्प चेतन और अनन्त आत्मा सबमें व्याप रहा हूँ और ब्रह्मरूप आत्मा हूँ । इन्द्रियों से आदि जितने भूतगण हैं उन सबका मैं आत्मा हूँ । यह भगवान् आत्मा सबके भीतर व्यापा है । जैसे सबके भीतर पाँचतत्त्व होते हैं तैसे ही यह चेतनरूप सर्व भाव को भर रहा है और सर्व भावों में व्याप रहा है । भैरवरूप और उदय अस्त भाव आदि विकारों से वह रहित है । ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त सबका आत्मा यही है । सब प्रकाशों का प्रकाशनेवाला दीपक वही है और संसाररूपी मोतियों के पिरोनेवाला तागा और सबका कारण कार्य यही है । वह साकार से रहित है और शरीरादिक सब उसी की सत्ता से उपलब्ध होते हैं । शरीररूपी रथ इसी से चलता है वास्तव में शरीरादिक कुछ वस्तु नहीं । यह जगत् चित्तरूपी नट की नृत्यलीलारूप है । चित्त में जगत् फुरता है वास्तव में और कुछ वस्तु नहीं । बड़ा कष्ट है कि मैं वृथा संग्रह असंग्रह की चिन्ता करता था । यह गुणों का प्रवाह है इसमें मैं क्यों शोकवान् होता था ? बड़ा आश्चर्य है कि असत्यभ्रम सत्य हो मुझको दीखता था । अब मैं निश्चय करके सम प्रबोध हुआ हूँ और दुर्दृष्टि मेरी दूर हुई है । दृष्टि की जो अलभ्य दृष्टि है सो अब मैंने देखी है और जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया है और अचैत्य चिन्मात्र को प्राप्त हुआ हूँ । जो कुछ दृश्य है उसको मैं स्वरूप से देखता हूँ और अहं मम दुःख मेरा नष्ट हुआ है । मैं चिदानन्द पूर्ण और नित्य शुद्ध अनन्त आत्मा अपने आप में स्थित हूँ । ग्रहण क्या और त्याग

क्या ? यह क्लेश कोई नहीं और न कोई दुःख है, न सुख है, सर्व ब्रह्म है और दूसरी वस्तु कुछ नहीं । मैं राग किसका करूँ और द्वेष किसका हो ? मैं मिथ्या मूढ़ता को प्राप्त होकर दुःखी होता था. अब कल्याण हुआ कि मैं अमूढ़ होकर अपने आप स्वभाव में स्थित हुआ हूँ । ऐसे आत्मा के साक्षात्कार बिना मैं दुःखी था । इसके देखे से अब किसका शोक करूँ और मोह को कैसे प्राप्त होऊँ । अब मैं क्या देखूँ, क्या करूँ और कहाँ स्थित होऊँ ? यह सब जगत् आत्मा के प्रकाश से है और सब आत्मरूप है । हे अतत्त्वरूप ! अर्थात् जिसमें तत्त्वों की उपाधि कुछ नहीं तेरी दृष्टि निष्कलङ्क है । मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हूँ । मेरा तुझको नमस्कार है । मैं अनन्त आत्मा, अनुभवरूप, निष्कलङ्क, सब इच्छा भ्रमरहित, सुषुप्ति की नाईं शान्तरूप, अचैत्य, चिन्मात्र सदा अपने आपमें स्थित हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरथवृत्तान्तवर्णन-
नाम चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! क्रान्त जो सुवर्णरूप देश है उसका राजा परमानन्द को प्राप्त हुआ । वह इस प्रकार विचार अभ्यास से ब्रह्मरूप हुआ जैसे गाधि का पुत्र विश्वामित्र तपस्या करके उसी शरीर से क्षत्रिय से ब्राह्मण हुआ था तैसे ही राजा सुरथ अभ्यास करके ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ और जैसे सूर्य इष्ट अनिष्ट में सम है और विगतज्वर होकर दिनों को व्यतीत करता है तैसे ही राग द्वेष से रहित वह राज्य का कार्य करता रहा । जैसे जल ऊँची नीची ठौर में जाता है और अपना जलभाव नहीं त्यागता सम रहता है, तैसे ही राजा हर्षशोक से रहित होकर राज्य कार्य करता रहा और स्वभाव को न त्यागा । आत्मविचार का धार सुषुप्ति की नाईं उसकी वृत्ति हो गई और संसार भाव का फुरना रुक गया। जैसे वायु से रहित दीपक प्रकाशता है तैसे ही वह शुद्ध प्रकाश धारता भया । हे रामजी ! वह दया करता भी दृष्टि आवे परन्तु उसकी दृष्टि में कुछ दया नहीं और दया से रहित भी औरों को दीखे परन्तु उसकी दृष्टि में निर्दयता नहीं । न कुछ सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ सब पदार्थों में एक समभाव आत्मा देखे और हृदय से पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतल

रहे । वह जगत् आत्मा का किञ्चनरूप जानता था और उसके सुख दुःख का भाव शान्त हो गया । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार नष्ट हो जाता है तैसे ही उसके सुख दुःख नष्ट हो गये थे। शोक, विलास करता, मत्त होता, स्थित होता, चलता श्वास लेता और पाँचों विषयों को ग्रहण करता वह राग द्वेष को प्राप्त न होता था । जैसे पत्थर में फुरना कुछ नहीं फुरता तैसे ही उसको कर्तृत्व भोक्तृत्व का मान कुछ न फुरा, सब कर्तव्य को करता भी निःसंग रहा जैसे जल में कमल अलेप रहता है तैसे ही वह राज्य में निर्लेप होकर जीवन्मुक्त हुआ । इस प्रकार जब बहुत काल बीता तब उसने शरीर का त्याग किया । जैसे बरफ का कणका सूर्य के तेज से जलमय हो जाता है तैसे ही उसका शरीर अपने भाव को त्यागकर आत्मतत्त्व में लीन हो गया । जैसे नदी समुद्र में लीन होती है और फिर भिन्न नहीं भासती तैसे ही सुरघ अपने भाव को त्यागकर उज्जवलभाव को प्राप्त हुआ और कलनारूपी मल को त्यागकर निर्मल ब्रह्म हुआ । जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही यह निर्मल चिदानन्द ज्योतिभाव को प्राप्त हुआ और जैसे घट फूटे से घटाकाश महाकाश हो जाता है तैसे ही वह पूर्णब्रह्म चिदानन्द तत्त्व हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तान्तसमाप्तिर्नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुम भी इसी दृष्टि का आश्रय करके विचरो तब सब भय मिट जावेगा । जैसे घोर तम में बालक भय पाता है और जब दीपक का प्रकाश होता है तब निर्भय होता है तैसे ही संसाररूपी घोरतम में आया पुरुष दुःख पाता है और जब ज्ञानरूपी दीपक उदय होता है तब निर्भय हो जाता है । हे रामजी ! जब आत्म विचार में कुछ भी मनुष्य का चित्त विश्राम पाता है तब उस विश्राम का आश्रयकर वह संसारसमुद्र से निकल जाता है, जैसे गढ़े में गिरे और तृण का वृक्ष हाथ लगे तो भी उसके आश्रय से निकल आता है । हे रामजी ! यह पावन दृष्टि मैंने तुमसे कही है इसको चित्त में विचारो और परस्पर मिलकर उदाहरण के साथ अभ्यास कर नित्य एक समाधि में स्थित हो और

पृथ्वी का भूषण होकर लोगों में विचरो। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! एक समाधि किसको कहते हैं और कैसे होती है सो कहो जिसमें मेरा चित्त जो फुरता है सो स्थित हो। जैसे वायु से मोर की पुच्छ हिलती है तैसे ही चञ्चलरूप चित्त सदा फुरता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जबसुरघ प्रबुद्ध हुआ था तब उसका संवाद पर्णादि राजऋषि के साथ हुआ था वह अद्भुत समाधि है, उसको सुनकर विचारोगे तो तुम भी एक समाधिमान् होगे। उसने परस्पर मिलकर जो चर्चा की थी सो सुनो। हे रामजी! पारसदेश का राजा महा वीर्यवान् था। उसका परघ नाम था और वह सुरघ का मित्र था। जैसे नन्दनवन में कामदेव और वसन्तऋतु का मित्रभाव होता है तैसे सुरघ और परघ का मित्रभाव था। एक काल में परघ के देश में प्रलयकाल बिना प्रलयकाल की नाईं समय हुआ और उससे सब जीव दुःख पाने लगे। निदान प्रजा की पापबुद्धि का फल आन लगा और महादुर्भिक्ष पड़ा। कोई क्षुधा से मृतक हुए, कोई अग्नि से जल मरे और बहुतेरे झगड़ा करके मृतक हुए। प्रजा बहुत दुःख को प्राप्त हुई पर राजा को कुछ दुःख प्राप्त न हुआ। जब प्रजा ने बहुत दुःख पाया और राजा ने प्रजा को दुःखी देखा पर प्रजा का दुःख निवृत्त न कर सका तो प्रजा अपने अपने कुटुम्ब को त्यागकर चली गई—जैसे बन में अग्नि लगने से पक्षी त्याग जाते हैं। तब राजा एक पहाड़ की कन्दरा में तप करने लगा और ऐसा तप करने लगा जैसा कि जिनेन्द्र ने किया था। वह उस कन्दरा में फल न पाये केवल सूखे पत्ते लेकर खावे—जैसे अग्नि सूखे पत्तों को भक्षण करती है उससे उसका नाम पर्णाद हुआ। निदान चित्त की वृत्ति को आत्मपद में लगाकर सहस्रवर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब अभ्यास के बल से चित्त स्थित हुए से केवल ज्ञानरूप आत्मतत्त्व हृदय की निर्मलता से प्रकाश आया और सब तप्तता मिट गई। तब वह राग द्वेष से रहित हो निष्क्रिय—आत्मदर्शी—जीवन्मुक्त होकर विचरने लगा। जैसे सरोवरों में कमलों के निकट भँवरा हंसों के साथ जा मिलता है तैसे ही सिद्धों के साथ राजा जा मिले। ऐसे फिरता फिरता वह क्रान्त देश में सुरघ के स्थानों को गया। सुरघ पूर्वमित्र को देखकर उठ खड़ा

हुआ और परस्पर कण्ठ लगाके मिले फिर परस्परभाव करके एक आसन पर चन्द्रमा और सूर्य के समान दोनों बैठ गये और आपस में कुशल पूछने लगे । प्रथम परघ बोला, हे मित्र ! तेरे दर्शन से जैसे कोई चन्द्रमा के मण्डल में जा आनन्दवान् हो तैसे ही मैं आनन्दवान् हुआ हूँ । बहुत काल का जो वियोग होता है तो बहुत प्रीति बढ़ती है जैसे वृक्ष को ऊपर काटे से बढ़ता है तैसे ही प्रीति बढ़ती है । हे साधो ! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ और तू भी माण्डव मुनि और आत्मा के प्रसाद से ज्ञान को प्राप्त हुआ है । हे राजन् ! मेरा अभीष्ट प्रश्न यह है कि तू अब दुःखों से मुक्त होकर विश्राम को प्राप्त हुआ है । आत्मपद पाने की बड़ाई मेरु आदिक से भी ऊँची है उसको तू प्राप्त हुआ है और परम कल्याणवान् आत्मारामी हुआ है । तुम रागद्वेष मल से रहित हुए हो—जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है—और सब कार्यों के करते भी समभाव में रहते हो । आधि-व्याधि ताप तुम्हारे दूर हुए हैं; तुम्हारी प्रजा भी विगतज्वर हुई है और धन, राज्य और माल में भी कुशल है । जैसे चन्द्रमा की किरणें शीतलता फैलाती हैं तैसे ही तुम्हारा यश दशों दिशाओं में फैल रहा है और तुम्हारा यश ग्राम-वासी क्षेत्रों में लड़कियाँ गाती हैं । हे राजन् ! तुम्हारे प्रजा, नौकर, पुत्र और कलत्र सब आधि-व्याधि से रहित हुए हैं । विषय पदार्थ आपाता-रमणीय हैं उनमें अब तुम्हारी प्रीति नहीं है और तृष्णारूपी सर्पिणी तुमको अब तो नहीं डसती । हे राजन् ! तुम्हारी हमारी मित्रता हुई थी । समय पाकर तुम कहाँ रहे और हम कहाँ रहे, अब फिर इकट्ठे हुए हैं । बड़ा आश्चर्य है ? ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती, सुख से दुःख हो जाता है और दुःख गये से सुख हो जाता है । संसार की दशा आरामपायी है, संयोग का वियोग होता है और वियोग का संयोग होता है । तैसे ही तुम्हारा हमारा भी संयोग का वियोग हो गया था और अब फिर वियोग का संयोग हुआ है । बड़ा आश्चर्य है—ईश्वर की नीति अद्भुतरूप है । सुरघ बोले, हे देव ! परमात्मा देव की नीति जान नहीं सकते । वह महा-गम्भीर विस्मय में देनेवाली और दुर्ज्ञात है । तुम्हारा हमारा वियोग

हुआ तब दूर से दूर जा पड़े, तुम कहाँ थे और हम कहाँ थे अब फिर इकट्ठे हुए हैं। देव की नीति आश्चर्यरूप है। तुमने जो मुझसे कुशल पूछी सो तुम्हारा आना ही पुण्य है उससे मैं परम पावन हुआ हूँ और तुम्हारे दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। आज हमारे पुण्य का फल लगा है जो तुम्हारा दर्शन हुआ है और जो कुछ यश सम्पदा है, वह सब आज प्राप्त हुई है। हे भगवन्! सन्तों का आना मधुर अमृत की नाईं है। जैसे अमृत झरने से निकलता है तैसे ही तुम्हारे दर्शन और वचनों से परमार्थरूपी अमृत स्रवता है। जिसको पाकर जीव निर्भयता को प्राप्त होता है। सन्तों का मिलना परमपद के तुल्य है इसलिये हम परम शुद्धता को प्राप्त हुए हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघसमागमवर्णन-
नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब वे पूर्व वृत्तान्त कह रहे थे तब फिर परघ बोले, हे राजन्! समाहित चित्त इस जगज्जाल में जो-जो कर्म करता है सो सुखरूप होता है। संकल्प से रहित जो परम विश्राम और परम उपशम समाधि है उसमें अब तुम स्थित हुए हो। सुरघ बोले, हे भगवन्! तुम्हीं कहो कि सब संकल्पों से रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं? और यदि तुम मुझको पूछो तो सुनो। जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं वे चाहे तूष्णीम् रहें अथवा व्यवहार करें असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होते। हे साधो! जिनका नित्य प्रबुद्ध चित्त है वे जगत् के कार्य भी करते हैं पर आत्मतत्त्व में स्थित हैं। तो वह सर्वदा समाधि में स्थित हैं और जो पद्मासन बाँधकर बैठते हैं और ब्रह्माञ्जली हाथ में रखते हैं पर चित्त आत्मपद में स्थित नहीं होता और विश्रान्ति नहीं पाते तो उनको समाधि कहाँ? वह समाधि नहीं कहाती। हे भगवन्! परमार्थ तत्त्वबोध आशारूपी सब तृणों के जलानेवाली अग्नि है। ऐसी निराशरूपी जो समाधि वही समाधि है। तूष्णीम् होने का नाम समाधि नहीं है। हे साधो! जिसका चित्त समाहित, नित्यतृप्त और सदा शान्तरूप है और जो यथा भूतार्थ है अर्थात् जिसे ज्यों का त्यों ज्ञान हुआ है और उसमें निश्चय है वह समाधि कहाती है: तूष्णीम् होने का नाम

समाधि नहीं है जिसके हृदय में संसाररूप सत्यता का क्षोभ नहीं है, जो निरहंकार है और अनउदय ही उदय है वह पुरुष समाधि में कहाता है। ऐसा जो बुद्धिमान है वह सुमेरु से भी अधिक स्थित है। हे साधो ! जो पुरुष निश्चिन्त है, जिसका ग्रहण और त्याग बुद्धि निवृत्त हुई है, जिसे पूर्ण आत्मतत्त्व ही भासता है वह व्यवहार भी करता दृष्ट आता है तो भी उसकी समाधि है। जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्व में स्थित होता है उसकी अत्यन्त समाधि है और क्षण-क्षण बढ़ती जाती है निवृत्त नहीं होती। जैसे अमृत के पान किये से उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है तैसे ही एक क्षण को भी समाधि बढ़ती ही जाती है। जैसे सूर्य के उदय हुए सब किसी को दिन भासता है तैसे ही ज्ञानवान् को सब आत्मतत्त्व भासता है—कदाचित् भिन्न नहीं भासता। जैसे नदी का प्रवाह किसी से रोका नहीं जाता तैसे ही ज्ञानवान् की आत्मदृष्टि किसी से रोकी नहीं जाती और जैसे काल की गति काल को एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती तैसे ही ज्ञानवान् की आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती। जैसे चलने से ठहरे पवन को अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् को चिन्मात्र तत्त्व का विस्मरण नहीं होता और जैसे सत् शब्द विना कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् को आत्मा के सिवाय कोई पदार्थ नहीं भासता। जिस ओर ज्ञानवान् की दृष्टि जाती है उसे वहाँ अपना आप ही भासता है—जैसे दर्पण के मन्दिर में सर्व ओर अपना ही मुख भासता है। जैसे उष्णता विना अग्नि नहीं, शीतलता विना बरफ नहीं और श्यामता विना काजर नहीं होता तैसे आत्मा विना जगत् नहीं होता। हे साधो ! जिसको आत्मा से भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता उसको उत्थान कैसे हो ? मैं सर्वदा बोधरूप, निर्मल और सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हूँ, इससे उत्थान मुझको कदाचित् नहीं होगा। आत्मा से भिन्न मुझको कोई नहीं भासता सब प्रकार आत्मतत्त्व ही मुझको भासता है। हे साधो ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है। सर्वदा और सब प्रकार आत्मा स्थित है, फिर समाधि और उत्थान कैसे हो ? जिसको कार्य कारण में

विभाग* कलना नहीं फुरती और जो आत्मतत्त्व में ही स्थित है उसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि और उत्थान का वास्तव में कुछ भेद नहीं । आत्मतत्त्व सदा अपने आप में स्थित है, द्वैतभेद कुछ नहीं तो समाहित असमाहित क्या कहिये ?

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनन्नाम सप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५७ ॥

सुरघ बोले, हे राजन् ! निश्चय करके अब तुम जागे हो और परम-पद को प्राप्त हुए हो । तुम्हारा अन्तःकरण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतल हुआ है और परम शोभा से तुम्हारा मुख शोभित होकर तुम ब्रह्मलक्ष्मीसम्पन्न और परमानन्द से पूर्ण हुए हो । तुम्हारा हृदयकमल शीतल और स्निग्ध विराजमान है और निर्मल तुम्हारी विस्तृत गम्भीरता मुझको प्रकट भासती है । निर्मल शरत्काल के आकाशवत् तुम्हारा हृदय भासता है और अहंकाररूपी मेघ तेरा नष्ट हुआ है । हे राजन् ! अब तुमको सर्वत्र स्वस्थ और सर्वथा सन्तुष्टता है और किसी में राग नहीं । तुम वीतराग होकर विराजते हो, सार असार को तुमने भली प्रकार जाना है और उसे जानकर असार संसाररूपी समुद्र सेपार हुए हो और महाबोध को तुमने ज्यों का त्यों जानकर अखण्ड स्थिति पाई है और भाव-अभाव पदार्थ दोनों को तुम जानते हो । तुम जगत् के सम असम पदार्थों से मुक्त हो और तुम्हारा आशय पवित्र और मुदिता प्राप्त हुई । इष्ट, अनिष्ट, ग्रहण, त्याग तुम्हारा निवृत्त हुआ है, राग द्वेष और तृष्णारूपी बादलों से रहित निर्मल आकाशवत् तुम शोभते हो और अपने आपसे तृप्त हुए हो कुछ इच्छा तुमको नहीं है । सुरघ बोले हे मुनीश्वर ! इस जगत् में ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं । जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सब आभासरूप हैं तो ग्रहण किसको कीजिये ? और जो कहिये कि ग्रहण करने योग्य नहीं इससे त्याग करिये तो आभासरूप पदार्थों का त्याग क्या कीजिये और ग्रहण क्या कीजिये क्योंकि है नहीं सब तुच्छ पदार्थ हैं जैसे सूर्य की किरणों में जल

* "समोमनाशको गुणो विभाग ।"

भासता है तो उस जलाभास का कौन अङ्ग ग्रहण कीजिये और कौन अङ्ग त्याग कीजिये, तैसे ही यह जगत् भी है। हे मुनीश्वर! जगत् के कोई पदार्थ तुच्छ हैं और कोई अतुच्छ हैं। जो थोड़े काल में नष्ट हो जाते हैं सो तुच्छ हैं और जो चिरकालपर्यन्त रहते हैं वे अतुच्छ हैं परन्तु दोनों काल से उपजे हैं अब मैंने अकालरूप को देखा है इससे दोनों तुल्य हो गये हैं फिर इच्छा किसकी करूँ? हे मुनीश्वर! जो पदार्थों को रमणीय जानते हैं वे उनकी इच्छा करते हैं पर त्रिलोकी में रमणीय पदार्थ कोई नहीं, सब तुच्छ और नाशरूप हैं और अविचार से जीवों को भासते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जो इन्द्रियों के विषय हैं वे भी सब असाररूप हैं। स्त्री को बड़ा पदार्थ जानते हैं पर वह भी देखने-मात्र सुन्दर है और भीतर से रक्त, मांस, विष्ठा और मूत्र का थैला बना हुआ है—इसमें भी कुछ सार नहीं। पर्वत बड़े पदार्थ हैं सो पत्थर बट्टे हैं, समुद्र जल है वनस्पति काष्ठ—पत्र हैं और इनसे आदि जो पदार्थ हैं वे सब आपातरमणीय हैं विचार विना सुन्दर भासते हैं। इनकी जो इच्छा करते हैं वे अपने नाश के निमित्त करते हैं—जैसे पतङ्ग दीपक की इच्छा करता है सो अपने नाश के निमित्त करता है और हरिण राग की इच्छा से नाश को प्राप्त होता है तैसे ही जो विषयों की तृष्णा करते हैं वे अपने नाश को करते हैं। इससे विचार से रहित जो अज्ञानी हैं वे पदार्थों को रमणीय जानकर अपने नाश के निमित्त इच्छा करते हैं और जो सम-दर्शी ज्ञानवान् हैं वे उन्हें अरमणीय जानकर किसी जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं करते। जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार का अभाव होता है तैसे ही जब पदार्थों का राग उठ गया तब तृष्णा किसमें रहे। हे साधो! राग द्वेष इच्छा ग्रहण त्याग जो कुछ विचारे हैं उन सबसे रहित शुद्ध आत्मतत्त्व में स्थित हो। बहुत कहने से क्या है जिस पुरुष के मन से वासना नष्ट हो गई है वह उपशमवान् कल्याणमूर्ति परमपद को प्राप्त हुआ और संसारसमुद्र से तर गया है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघनिश्चयवर्णन-
नामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार सुरघ और परघ जगत् को भ्रमरूप विचारते परस्पर गुरु जानकर पूजते रहे, फिर कुछ दिन उपरान्त परघ चला गया । हे रामजी ! इनका जो परस्पर संवाद तुमको सुनाया है सो परमबोध का कारण है । इस विचार के क्रम से बोध की प्राप्ति होती है । तीक्ष्ण बोध से जब विचार करोगे तब अहंकाररूपी बादल का अभाव हो जावेगा और शुद्ध हृदयरूपी आकाश में आत्मरूपी सूर्य का प्रकाश हो जावेगा । इससे परमपद के लाभ के निमित्त अहंकाररूपी बादल के अभाव का यत्न करो । आत्मा जो सत्य और सब आनन्दों की सम्पदा चिदाकाश है उसमें स्थिति पावोगे । हे रामजी ! जो पुरुष नित्य अन्तर्मुखी अध्यात्ममय है और नित्य चिदानन्द में चित्त को लगाता है वह सदा सुखी है—उसको शोक कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष आत्मपद में स्थित हुआ है वह बड़े व्यवहार करे और राग द्वेष सहित दृष्टि आवे तो भी उसको कुछ कलङ्क नहीं होता । जैसे कमल जल में दृष्टि आता है तो भी ऊँचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता, तैसे ही ज्ञानवान् को व्यवहार का राग द्वेष हृदय में स्पर्श नहीं करता । हे रामजी ! जिसका मन शान्त हुआ है उसको संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थ चला नहीं सकते । जैसे सिंहों को मृग दुःख दे नहीं सकते, तैसे ही ज्ञानवान् को जगत् के पदार्थ दुःख नहीं दे सकते । जिस पुरुष को आत्मानन्द-प्राप्त हुआ है उसको विषयों की तृष्णा नहीं रहती और न वह विषयों के निमित्त कदाचित् दीन होता है । जैसे जो पुरुष नन्दनवन में स्थित होता है वह कण्टकों के वृक्ष की इच्छा नहीं करता तैसे ही ज्ञानवान् जगत् के पदार्थों की इच्छा नहीं करता । हे रामजी ! जिस जिस पुरुष ने जगत् का अविद्यारूप जानकर त्याग किया है उसके चित्त को जगत् के पदार्थ दुःख दे नहीं सकते । जैसे विरक्तचित्त पुरुष की स्त्री मर जावे तो उसको दुःख नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् के चित्त में भोगों को दीनता ऐसे नहीं उपजती उसे नन्दनवन में कण्टक का वृक्ष नहीं उपजता । जिस पुरुष को आत्मबोध हुआ है और संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ है वह जगत् का कार्यकर्ता दृष्टि आता है परन्तु वह कार्य उसको स्पर्श

नहीं करते–जैसे आकाश में अन्धकार दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता । हे रामजी ! अविद्या के निवृत्ति का कारण विद्या है और किसी उपाय से निवृत्ति नहीं होती । जैसे प्रकाश बिना तम निवृत्त नहीं होता तैसे ही विचार विना अविद्या निवृत्ति नहीं होती । अविचार का नाम अविद्या है और विचार का नाम विद्या है, जब अविद्या नष्ट होगी तब विषय भोग स्वाद न देवेंगे और आत्मानन्द से संतुष्टवान् रहोगे । हे रामजी ! ज्ञानवान् को विचार के कारण इन्द्रियों के व्यवहार अन्धा नहीं करते–जैसे जल में मछली रहती है उसको जल अन्धा नहीं कर सकता पर और अन्धे हो जाते हैं । जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, चित्त परमानन्द को प्राप्त हो जाता है और रागद्वेषरूपी निशाचर नष्ट हो जाता है । तब फिर मोह को नहीं प्राप्त होता । जिसके हृदय आकाश में आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है उसका जन्म और कुल सफल होता है । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने अमृत को पाकर अपने में ही शीतल होता है तैसे ही जो पुरुष आत्मचिन्तना में अभ्यास करता है वह शान्ति पाता है । हे रामजी ! बुद्धि श्रेष्ठ और सतशास्त्र वही है जिसमें संसार से वैराग और आत्मतत्त्व की चिन्तना उपजे । जब जीव आत्म-पद को पाता है तब उसका सब क्लेश मिट जाता है और जिसकी आत्म चिन्ता में रुचि नहीं वे महाअभागी हैं । ऐसे पुरुष चिर पर्यन्त कष्ट पावेंगे और जन्मरूपी जङ्गम के वृक्ष होंगे । हे रामजी ! जीवरूपी बल अनेक आशारूपी फाँसियों से बँधा है, जरा अवस्थारूपी पत्थरों के मार्ग से जर्जरीभूत होता है, भोगरूपी गढ़े में गिरा है और कर्मरूपी भार को लिये जन्मरूपी जङ्गम में भटककर कर्म कीचड़ में फँसा हुआ राग द्वेषरूपी मच्छरों से दुःखी होता है स्नेहरूपी रथ को पकड़ के खैंचता है और पुत्र, आदिक की ममतारूपी कीचड़ में गोते खाता है और मोह संसाररूपी मार्ग में कर्मरूपी रथ के साथ लगता है और ऊपर से अज्ञानरूपी तपता से जलता है और सन्तजन और सत्शास्त्ररूपी वृक्ष की छाया नहीं पाता । हे रामजी ! जीवरूपी ऐसा बैल है । उसे निका-

लने का यत्न करो जब तत्त्व का अवलोकन करोगे तब चित्तभ्रम नष्ट हो जावेगा। हे रामजी ! संसारस्रूपी समुद्र के तरने का उपाय सुनो। महा-पुरुष और सन्तजन मल्लाह हैं, उनका युक्तिरूपी जहाज है उससे संसार-रूपी समुद्र तर जावेगा, और उपाय कोई नहीं यही परम उपाय है। जिस देश में सन्तजनरूपी वृक्ष नहीं है और जिनकी फलों सहित शीतल छाया नहीं है उस निर्जन मरुस्थल में एक दिन भी न रहिये। हे रामजी ! सन्तजनरूपी वृक्ष हैं, जिनके स्निग्ध और शीतल वचनरूपी पत्र हैं, प्रसन्न होना सुन्दर फूल है और निश्चय उपदेशरूपी फल है। जब यह पुरुष उनके निकट जावे तब महामोहरूपी तप्तता से छूटेगा और शान्ति पाकर तृप्त होगा। तभी तीनों को पाकर अघावेगा और सब दुःखों से मुक्त होगा हे रामजी ! अपना आपही मित्र है और अपना आपही शत्रु है। अपने आपको जन्मरूपी कीचड़ में न डाले। जो देह में अहंभावना से विषयों की तृष्णा करता है वह अपना आपही नाश करता है। जो देह भाव को त्यागकर आत्म अभ्यास करता है वह अपना आप उद्धार करता है और वह अपना आपही मित्र है और जो आपको संसारसमुद्र में डालता है यह अपना आपही शत्रु है। हे रामजी ! प्रथम यह विचारकर देखे कि जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ है और कैसे निवृत्त होगा ? मैं कौन हूँ, सत्य क्या है और असत्य क्या है ? ऐसे विचार कर जो सत्य हैं उसको अङ्गीकार करे और जो असत्य है उसका त्याग करे। हे रामजी ! न धन कल्याण करता है न मित्र बान्धव और न शास्त्रकल्याण करते हैं, अपना उद्धार आपसे होता है। इससे तुम अपने मन के साथ मित्रता करो। जब वह दृढ़ वैराग्य और अभ्यास करे तब संसारकष्ट से छूटे। जब वैराग्य अभ्यास से तत्त्व के अवलोकन से अहंतारूप बेड़ी कटे तब संसार-समुद्र से तर जाता है। हे रामजी ! जीवरूपी हाथी जन्मरूपी गढ़े में गिरा हुआ है, तृष्णा और अहंकाररूपी जंजीर से बँधा है और कामनारूपी मद से उन्मत्त है। जब उनसे छूटे तब मुक्त हो। हे रामजी, हृदयरूपी औषध से अनात्म अभिमानरूपी रक्त रोग हो गया है, जब विचाररूपी नेत्रों से उसको दूर कीजिये तब आत्मरूपी सूर्य का दर्शन हो। हे रामजी ! और

उपाय कोई न करो तो एक उपाय तो अवश्य करो कि देह को काष्ठ लोष्टवत् जानकर इसका अभिमान त्यागो। जब अहं अभिमानरूपी बादल नष्ट होगा तब आपही आत्मरूपी सूर्य प्रकाश आवेगा। जब अहंकार-रूपी बादल लय होगा तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासेगा, वह परमानन्द-स्वरूप है, सुषुप्तिरूप मौन है अर्थात् केवल अद्वैत तत्त्व है, वाणी से कहा नहीं जाता अपने अनुभव से आपही जाना जाता है। हे रामजी! सब जगत् अत्यन्त आत्मा है। जब चित्त का दृढ़ परिणाम उसमें हो तब स्थावर जङ्गमरूप जगत् में वही दिव्यदेव भासेगा और वासना सब निवृत्त हो जावेगी। तब अनुभव से केवल परमानन्द आत्मतत्त्व दिखाई देगा सो स्वरूप पूर्ण और अद्वैत है। सब जगत् का त्याग कर उसी के पाने का यत्न करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे कारणोपदेशो
नामैकोनषष्टितमस्सर्गः॥ ५९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन से मन को छेदो और अहं ममभाव को त्यागो। जबतक मन नष्ट नहीं होता तब तक जगत् के दुःख निवृत्त नहीं होते। जैसे मूर्ति का सूर्य मूर्ति के नष्ट हुए बिना अस्त नहीं होता-जब मूर्ति नष्ट हो तब सूर्य का आकार भी दूर हो तैसे ही जब मन नष्ट हो तब संसार के दुःख नष्ट हो जावेंगे-अन्यथा नष्ट न होंगे। हे रामजी! जैसे प्रलयकाल में अनन्त दुःख होता है तैसे ही मन के होने से अनन्त दुःख होते हैं और जैसे मेघ के वर्षने से नदी बढ़ती जाती है तैसे ही मन के जागे से आपदा बढ़ती जाती है। इसही पर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्पर सुहृदों का हेतु है। हे रामजी! सह्याचल सब पर्वतों में बड़ा पर्वत है। उस पर फूलों के समूह और नाना प्रकार के वृक्ष हैं, जल के झरने चलते हैं और मोतियों के स्थान और सुवर्ण के शिखर हैं। कहीं देवताओं के स्थान हैं और कहीं पक्षी शब्द करते हैं। नीचे क्रान्त रहते हैं ऊपर सिद्ध, देवता और विद्याधर रहते हैं पीठ में मनुष्य रहते हैं और नीचे नाग रहते हैं-मानो सम्पूर्ण जगत् का गृह यही है। उसके उत्तर दिशा में सुन्दर वृक्ष और फूलों से पूर्ण तालाब है

जिसकी महासुन्दररूप रचना स्वर्ग की सी है। वहाँ अत्रिनाम एक ऋषीश्वर साधुओं के श्रम दूर करने वाला रहता था। उसके आश्रय के पास दो तपस्वी आ रहने लगे–जैसे आकाश में बृहस्पति और शुक्र आ रहे। उन दोनों के गृह में दो महासुन्दर पुत्र जैसे कमल उत्पन्न हो तैसे ही उत्पन्न हुए उनमें एक का नाम भास और दूसरे का नाम विलास हुआ। दोनों क्रम से बड़े हुए और जैसे अंकुर के दोनों पत्र बढ़ते हैं तैसे ही वे बढ़ने लगे। परस्पर उनकी प्रीति बहुत बढ़ी और इकट्ठे रहने लगे। जैसे तिल और तेल, और फूल और सुगन्ध इकट्ठे रहते हैं और जैसे स्त्री पुरुष की प्रीति आपस में होती है, तैसे ही उनकी प्रीति बढ़ी। वे देखनेमात्र तो दो मूर्ति दृष्ट आते थे परन्तु मानो एक ही थे। उनकी स्नान आदिक क्रिया और मानसी क्रिया भी एक समान था और वे महासुन्दर प्रकाशवान् थे जैसे चन्द्रमा और सूर्य हों जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनके माता पिता शरीर त्यागकर स्वर्ग को गये और उनके वियोग से वे दोनों शोकवान् हुए और जैसे कमल की कान्ति जल विना जाती रहे तैसे ही उनके मुख की कान्ति कुम्हिला गई। फिर उन्होंने उनके मरने की सब क्रिया की और उनके गुण सुमिरण करके विलाप करें और महाशोकवान् हों क्योंकि महापुरुष भी लोकमर्यादा नहीं लँघते। हे रामजी ! इस प्रकार शोक कर उनका शरीर कृश हो गया।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तान्त-
वर्णनन्नाम षष्टितमस्सर्गः ॥ ६० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे उजाड़ वन का वृक्ष जल बिना सूख जाता है तैसे ही उनका शरीर सूख गया। तब वे दोनों शोकातुर होकर विचरने लगे। जैसे समूह से बिछड़ा हरिण शोकवान् होता है तैसे ही वे दुःखी हुए क्योंकि उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त न था। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब वे फिर आ मिले। विलास ने कहा, हे भाई ! हृदय को आनन्द देनेवाला अमृत का समुद्र जीवनरूप जो वृक्ष है उस का फल सुख है सो तुम इतने काल क्या सुख से रहे। तुम्हारा हमारा वियोग हो गया था तब तुम कैसी क्रिया करते रहे। क्या तुमने अपना कुछ चित्त निर्मल किया है

और अब आत्मपद पाया है। क्या अब तुम्हारी बुद्धि शोक से रहित होकर विद्या तुमको फली है और तुम अब कुशलरूप हुए हो ? भास बोले, हे साधो ! अब हमको कुशल हुई जो तुम्हारा दर्शन हुआ। जगत् में कुशल कहाँ है, इस संसार में स्थित हुए हमको सुख और कुशल कहाँ है ? हे साधो ! जब तक ज्ञेय परमात्मतत्त्व को नहीं पाया, जब तक चित्तभूमिका क्षीण नहीं हुई और जबतक संसारसमुद्र को नहीं तरे तबतक कुशल कहाँ है ? जब तक चित्त से दुःख निवृत्त नहीं होता तब तक चित्त की भूमिका नष्ट नहीं होती। जब तक संसारसमुद्र से पार नहीं होते तब तक हमको सुख कहाँ है ? जब तक चित्तरूपी क्षेत्र में आशारूपी कण्टकों की बेलि बढ़ती जाती है और आत्मविचाररूपी हँसिये से नहीं काटी जाती तबतक हमको कुशल कहाँ, जब तक आत्मज्ञान उदय नहीं हुआ तबतक हमको कुशल कहाँ है ? हे साधो ! संसाररूपी विसूचिका रोग आत्मज्ञानरूपी औषध विना दूर नहीं होता । सब जीव नित्य वही क्रिया कहते हैं जिससे दुःख प्राप्त हो इससे सुख को नहीं पाते। देहरूपी वृक्ष में बालअवस्थारूपी पत्र हैं और यौवन और वृद्ध अवस्थारूपी फल हैं सो मृत्यु के मुख में जा पड़ता है, उपजता है और फिर नष्ट होता है। यह सुख जो लवाकार है और दुःख जिसका दीर्घ से दीर्घ है। ऐसे जो शुभाशुभ आरम्भ हैं उनमें इनको दिन-रात्रि व्यतीत होते हैं। हे साधो ! चित्त रूपी हाथी वैराग्यरूपी जंजीर विना तृष्णारूपी हथिनी के पीछे दूर से दूर चला जाता है । जैसे चील्ह पक्षी मांस की ओर जाता है तैसे ही चित्त विषयों की ओर धावता है और आत्मारूपी चिन्तामणि की ओर नहीं जाता। अहंकाररूपी चील्ह देहादिकरूपी मांस की ओर धावता है और सुखरूपी कमल अपानरूपी धूलि से धूसर हो जाता है और भोगरूपी बरफ से नष्ट हो जाता है। हे साधो ! यह देहरूपी कूप में गिरा है, जिसमें भोगरूपी सर्प है, आशारूपी कण्टक है और तृष्णारूपी जल है उसमें दुःख पाता है। हे साधो ! नाना प्रकार के रङ्गरञ्जनारूपी भोग हैं और जिसमें तृष्णारूपी चञ्चलता है ऐसे चैत्यदृश्य में मग्न है। चित्तरूपी ध्वजा कालरूपी वायु से हिलती है चित्तरूपी समुद्र में चिन्तारूपी भँवर

हैं जिसमें जीवरूपी तृण आय कष्ट पाता है और बुद्धिरूपी पक्षिणी है जो वासनारूपी जाल से कष्ट पाती है। यह मैंने किया है, यह करती हूँ और यह करूँगी, इसी वासनारूपी जाल में बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है—एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती। हे भाई ! इस चित्तरूपी कमल को राग-द्वेषरूपी हाथी चूर्ण करता है। यह मेरा सुहृद है, यह मेरा शत्रु है, यह 'अहं' 'मम' ही उसको मारता है। शुद्ध आत्मरूप को त्यागकर देहादिक अनात्मरूप में अहंभाव करता है और दीनता को प्राप्त होता है। जैसे राज्य से रहित राजा कष्ट पाता है तैसे ही आत्मभाव से रहित कष्ट पाता है और देहाभिमानी जन्ममरण के दुःख देखता है। जब देहाभिमान को त्याग करे तब कुशल हो अन्यथा कुशल नहीं होती।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे अन्तरप्रसङ्गो नामैकषष्टितमस्सर्गः ॥६१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उन्होंने परस्पर कुशल प्रश्न किया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ अभ्यास द्वारा उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त हुआ और मोक्षपद को प्राप्त हुए। इससे हे रामजी ! कल्याण के निमित्त ज्ञान के सिवा और मार्ग कोई नहीं। जिसका चित्त आशा-रूपी फाँसी से बँधा है वह संसारसमुद्र से पार नहीं हो सकता। इससे जीव संसारसमुद्र में गोते खाता है और ज्ञानवान् शीघ्र ही ऐसे तर जाता है जैसे गोपद लंघने में सुगम होता है। जैसे जिस पक्षी के पंख टूटे हैं सो समुद्र को नहीं तर सकता बीच में ही गिरके गोते खाता है और गरुड़ पंखों से शीघ्र ही लंघ जाता है, तैसे ही जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यासरूपी पंख टूटे हैं वे संसारसमुद्र से पार नहीं हो सकते और जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यासरूपी पंख हैं वे शीघ्र ही तर जाते हैं। हे रामजी ! जो देह से अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्व में स्थित हुए हैं वे ऊँचे होकर देखते हैं और अपने आप को देखके हँसते हैं—जैसे सूर्य जनता को देख हँसता है अर्थात् जगत् की क्रिया मे निर्लेप रहता है। जैसे रथ के टूटे से रथवाहक को कुछ खेद नहीं होता तैसे ही देह के दुःख से ज्ञानवान् को कदाचित् खेद नहीं होता और मनके क्षोभ से भी आत्मतत्त्व में कुछ क्षोभ नहीं होता। जैसे नरङ्ग पर धूलि पड़ती

है तो उसमे समुद्र को कुछ लेप नहीं होता तैसे ही मन के दुःख से आत्मा को क्षोभ नहीं होता। हे रामजी ! जैसे जल और हंस का और जल और नौका का कुछ सम्बन्ध नहीं तैसे ही देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे पहाड़ और समुद्र का सम्बन्ध नहीं, जैसे जल, पत्थर और काष्ठ एक ठौर रहते हैं परन्तु कुछ सम्बन्ध नहीं और जैसे जल और नौका का संसर्ग होता है तो जलकणके उठते हैं तैसे ही देह और आत्मा के संयोग से चित्तवृत्ति फुरती है। हे रामजी ! जीव को दुःख संग से ही होता है। जहाँ अहं मम का अभिमान होता है वहाँ दुःख भी होता है और जहाँ अहं मम का अभिमान नहीं वहाँ दुःख भी कुछ नहीं होता। जैसे मछली को जल में ममत्व होता है और उसके वियोग से कुछ पाती है तैसे ही जिस पुरुष को देह में अहं मम भाव है वह बड़ा कष्ट पाता है और जिसको देह में अभिमान नहीं उसको दुःख नहीं होता। हे रामजी ! ज्यों ज्यों मन से संसर्गता निवृत्त होती है त्यों त्यों भोग-प्रवाह कष्ट नहीं देता जैसे जल से पत्थर को कष्ट नहीं होता और जैसे दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पण को प्रतिबिम्ब का संग नहीं होता और कष्ट भी नहीं होता। तैसे ही जब देह से संसर्गभाव उठ जाता है तब कोई कष्ट नहीं होता। जैसे दर्पण को कुछ कष्ट नहीं होता तैसे ही आत्मा और जगत् की क्रिया है। हे रामजी ! सर्वथा संवित्मात्र आत्मतत्त्व स्थित है वह शुद्ध है और द्वैतशब्द के फुरने में रहित है। जो उसमें स्थित है उसको द्वैतशब्द नहीं फुरता और जो अज्ञानी है उसको द्वैतकलना उठती है। हे रामजी ! यह सब जीव अदुःखरूप हैं परन्तु अज्ञान से आपको दुःखी जानते हैं। जैसे स्थाणु में चोरभावना अविचार से होती है तैसे ही आत्मा में दुःख की भावना अविचार से होती है। यह जीव अशब्दरूप हैं परन्तु कलना के वश से आपको सम्बन्धी जानता है। जैसे स्वप्न में अङ्गना बन्धन करती है और स्थाणु में वैताल भासता है और भय प्राप्त होता है तैसे ही अपनी कल्पना से जीव बन्धवान् होता है। हे रामजी ! देह और आत्मा का सम्बन्ध असत्य है—जैसे जल और नौका का सम्बन्ध असत्य है। यदि जल का अभाव हो तो नौका को

कुछ चिन्ता नहीं होती और नौका का अभाव हो तो जल को कुछ चिन्ता नहीं, तैसे ही आत्मा और देह का सम्बन्ध असत्य है। जब ऐसे जानकर हृदय संग से रहित हो तब देह का दुःख कुछ नहीं लगता। देह के दुःख में आपको दुःखी मानना, देह से अहंभावना करके आत्मा दुःखी होता है। जब देह में अभिमान को त्याग दे तब सुखी हो। ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं। जैसे जल और पत्थर इकट्ठे रहते हैं परन्तु भीतर संग का अभाव है इससे उन्हें कुछ दुःख नहीं होता तैसे ही हृदय से संगरहित हो तब देह इन्द्रियों के होते भी दुःख का स्पर्श कुछ न हो और निर्दुःख पद में प्राप्त हो। हे रामजी ! जिसको देह में आत्माभिमान है उसको जन्ममरण दुःखरूप संसार भी है। जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है तैसे ही देहाभिमान से सुखदुःखरूप संसार उत्पन्न होता है और संसारसमुद्र में डूबता है। जो हृदय से संग से रहित होता है सो संसारसमुद्र के पार हो जाता है। हे रामजी ! जिसके हृदय में देहाभिमान है उसके चित्तरूपी वृक्ष में मोहरूपी अनेक शाखा उत्पन्न होती है और जिसका हृदय संग से रहित है उसका मोह लीन हो जाता है उसको चित्तलीन कहते हैं। जिसका चित्त देहादिकों में बन्धवान् है उसको नाना प्रकार का भ्रमरूप जगत् भासता और जिसका चित्त देहादिकों में बन्धवान् नहीं वह एक आत्मभाव को देखता है जैसे टूटी आरसी में अनेक प्रतिबिम्ब भासते हैं और साजी एक ही प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है, तैसे ही संशययुक्त चित्त में नाना प्रकार का जगत् भासता है और शुद्ध चित्त में एक आत्मा ही भासता है हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार करते हैं और संग से रहित हैं ऐसे निर्मल पुरुष संसार से मुक्त हैं और जो सर्वव्यवहार को त्याग बैठते हैं पर तप भी करते हैं और चित्त आसक्त है सो बन्धन में है। जो हृदय में संग से रहित है वह मुक्त है और अन्तरचित्त किसी पदार्थ में बन्ध है, वह बन्ध है। बन्ध और मुक्त का इतना ही भेद है। जिसका हृदय असंग है वह सब कार्यकर्त्ता भी अकर्त्ता है। जैसे नट सब स्वागों को धरता भी अलेप है तैसे ही वह पुरुष अलेप है। जो हृदय में अभिमान सहित है वह कुछ नहीं करता तो भी करता है। जैसे सर्वव्यवहार

त्यागकर जीव शयन करता है और स्वप्न में अनेक सुख दुःख भोगता है तैसे ही वह सब कुछ करता है। चित्त के करने से कर्त्ता है, चित्त के न करने से ही अकर्त्ता है। शरीर से करना सो करना नहीं और शरीर से न करना सो न करना नहीं। ब्रह्महत्या से भी असंयुक्त पुरुष को कुछ पाप नहीं लगता और जो अश्वमेधयज्ञ करे तो कुछ पुण्य नहीं होता। जिसके चित्त से सब आसक्ता दूर हुई है वह पुरुष मुक्तस्वरूप है और धन्य-धन्य है जिसका चित्त आसक्त है वह बन्ध और दुःखी है। जो पुरुष आसक्तता से रहित है वह आकाश की नाईं निर्मल है और समभाव, एक अद्वैत आत्मतत्त्व में स्थित है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे अन्तरासङ्गविचारो नाम द्विषष्टितमस्सर्गः ॥ ६२ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संग किसको कहते हैं? बन्धरूप संग किसको कहते हैं, मोक्षरूप असंग किसको कहते हैं और संग बन्धनो से मुक्त किसका नाम है और किस उपाय से मुक्त होता है वह कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देह और देही का जो संग है उसका त्याग करो और उसके साथ जो मिलकर करता है और देहमात्र में अपना विश्वास करता है कि इतना ही मैं हूँ, इसी को संग और बन्ध कहते हैं। हे रामजी! आत्मतत्त्व अनन्त है। देहमात्र में अहंभावना से आपको उतना ही मानना और उसमें अभिमान करके सुख की इच्छा करना इसी का नाम बन्ध है और इसी को संग कहते हैं। जिसको यह निश्चय हुआ है कि सर्व आत्मा ही है, मैं किसकी इच्छा करूँ और किसका त्याग करूँ, वह इस असंग से जीवन्मुक्त कहाता है। अथवा न मैं हूँ, न यह जगत् है, सर्वभाव अभाव को त्यागकर अद्वैतसत्ता में स्थित होने का नाम जीवन्मुक्त है। जिसे न कर्मों के त्याग की इच्छा है, न करने की इच्छा है और हृदय से कर्तृत्वभाव नहीं इस संग का जिसने त्याग किया है वह असंग कहाता है। हे रामजी! जिसको आत्मतत्त्व में निश्चय है और जो राग, द्वेष, हर्ष, शोक के वश नहीं होता है, वही असंग कहाता है। जिसने सर्व कर्मों का फल यह समझकर

त्याग किया है कि मैं कुछ नहीं करता ऐसा जो मन से त्याग है वह असंगी कहाता है और उसको कोई कर्म बन्धन नहीं कर सकता किन्तु दैवी सम्पदा उसको प्राप्त होती हैं और जो संसक्त पुरुष कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान सहित है उसको अनन्त दुःख उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई गढ़े में गिरे और उसमें कण्टकों के वृक्ष हों तो उनमें वह कष्ट पाता है तैसे ही संसक्त पुरुष कष्ट पाता है। हे रामजी ! संग के वश से विस्तृत दुःख की परम्परा उत्पन्न होती है—जैसे बबूल के वृक्ष से कण्टक उत्पन्न हो। हे रामजी ! जैसे नासिका में रस्सी डालकर ऊँट, बैल और गधे मार उठाते फिरते हैं और मार खाते हैं तैसे ही संसक्त पुरुष आशारूपी फाँसी से बाँधे हुए दुःख पाते हैं। उसी संसक्तता का फल ऊँटादिक भोगते हैं, इसी प्रकार संसक्तता का फल वृक्ष भोगते हैं, जल में रहते हैं, शीत-उष्ण से कष्टवान् होते हैं और कुल्हाड़े से काटे जाते हैं। पृथ्वी के बिद्र में कीट होते हैं और अङ्गपीड़ा से कष्ट पाते हैं। अन्नादिक उगते हैं, हँसिये से काटे जाते हैं और हृदय में दुःख पाते हैं, फिर बोये जाते हैं फिर काटते हैं सो संसक्तता का ही फल भोगते हैं, इसी प्रकार जो योनि पाते हैं और कष्टवान् होते हैं सो संसक्त हैं। हरे तृणों को हरिण खाते हैं और बधिक उनको बाण से मारता है तब कष्टवान् होते हैं। जो जीव तुझको दृष्टि आते हैं वे इस प्रकार संसक्तता से बाँधे हुए हैं। संसक्तता भी दो प्रकार की है—एक बन्ध और एक बन्धन करने योग्य। जो तत्त्वेत्ता है वह वन्दना करने योग्य है। हे रामजी ! जो आत्मतत्त्व से गिरा है और देहादिक में अभिमानी हुआ है वह मूढ़ है और संसार में जन्म को प्राप्त होता है, और जिसको आत्मतत्त्व का ज्ञान हुआ है और निष्ठा है वह वन्दना करने योग्य है, इसको फिर संसार का जन्ममरण नहीं होता। जिसके हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म है, जिसको आत्मतत्त्व में निश्चय है और आत्मतत्त्व में संसक्त है और जो तीनों लोकों की पालना करता है वह वन्दना करने योग्य है। निरालम्ब सूर्य जो आकाश में विचरता है और सदा स्वरूपनिष्ठ है वह वन्दना करने योग्य है। महाप्रलय पर्यन्त जो जगत् को उत्पन्न करता है, जो सदा शिव-

स्वरूप में संसक्त है और जो ब्रह्मारूप होकर विराजता है वह वन्दना करने योग्य है जो लीला से स्त्री को अर्धाङ्ग रखता है, उसके प्रेमरूपी बन्धन से बँधा है, विभूति लगाता है सदा स्वरूप में संसक्त है और शंकर वपु धारकर स्थित है वह वन्दना करने योग्य है। इनसे आदि लेकर सिद्ध, देवता, विद्याधर लोकपाल जिनकी स्वरूप में संसक्ति है वे सब मुक्तस्वरूप हैं और वन्दना करने योग्य हैं और जो देहादिकों में संसक्त हैं वे बन्ध हैं और जन्म, जरा और मृत्यु पाते हैं और कष्टवान् होते हैं। हे रामजी! जिनको शरीर में अभिमान है वे यदि बाहर से उदार भी दृष्टि जाते हैं परन्तु जब भोगों को देखते हैं तब इस प्रकार गिरते हैं जैसे मांस को देखकर आकाश से चील पखेरू गिरते हैं तो वे वृथा यत्न करते हैं। हे रामजी! जो संसक्त जीव हैं वे बाँधे हुए हैं, कोई देवतारूप धार स्वर्ग में रहते और कोई मनुष्यलोक में रहते हैं, बहुत से सर्प आदिक होके पाताल में रहते हैं और तीनों लोकों में भटकते फिरते हैं, जैसे गूलर में मच्छर रहते हैं तैसे ही ब्रह्माण्ड में संसक्त जीव रहते और मिट जाते हैं। कालरूपी बालक का जीवरूपी गेंद है, वह उसे कभी नीचे को उछालता है और कभी ऊपर को उछालता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह सब असत्यरूप है। मनरूपी चितेरे ने संगरूपी रङ्ग से शून्य आकाश में जो देहादिक जगत् लिखा है वह सब असत्यरूप है जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिट जाते हैं तैसे ही जीव ब्रह्माण्ड में उपजते रहते हैं। जिसका मन देहादिक में संसक्त है वह तृष्णारूपी अग्नि से तृणों की नाईं जलता है। हे रामजी! जो संसक्त पुरुष है उसके शरीर पाने की कुछ संख्या नहीं। मेरु के शिखर से लेकर चरणों पर्यन्त गंगा का प्रवाह चले तो उसके कणके चाहे गिने जा सकें परन्तु संसक्त जीव के शरीर की संख्या नहीं हो सकती जो कुछ आपदा है वह उनको प्राप्त होती है। जैसे समुद्र में सब नदियाँ प्राप्त होती है तैसे ही सब आपदा उसको प्राप्त होती हैं। हे रामजी! जो देहाभिमानी सदा विषयों का सेवन करते हैं वे रौरव कालसत्र आदिक नरकों में जलेंगे और जो कुछ दुःख के स्थान हैं वे सब उनको प्राप्त होंगे। जो असंग संगती चित्त हैं उन पुरुषों को सब विभूति प्राप्त होती

हैं। जैसे वर्षाकाल में नदियाँ जल से पूर्ण होती हैं और मानसरोवर में सब हंस आन स्थित होते हैं तैसे ही असंसक्तचित्त पुरुष को दैवी सम्पदा प्राप्त होती है। जिस पुरुष को देहाभिमान बढ़ जाता है उसे विष की नाईं जानो और जिसका देहाभिमान घट जाता है उसको अमृतरूप जानो। विष ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों मारता है और अमृत ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों अमर होता है। हे रामजी ! जो पुरुष देहाभिमान को त्यागकर स्वरूप में संसक्त होता है वह सुखी होता है और जिसके हृदय में दृश्य का संग है उसको यह संसक्तरूपी अङ्गार जलावेगा जिसके हृदय में संग नहीं वह असंगरूपी अमृत से सुखी होवेगा और चन्द्रमा की नाईं शीतल मुक्तरूप होगा उसका अविद्यारूपी विसूचिका रोग नष्ट होकर वह शान्तरूप होगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तविचारो
नाम त्रिषष्टितमस्सर्गः ॥६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको विचार करके अभ्यास करो और सर्वदाकाल सर्व स्थान और सर्व कर्मों के कर्त्ता चित्त को देहादिक में मत संसक्त कर केवल आत्मचेतन में स्थित करो। हे रामजी ! किसी वस्तु को सत्य जानके चित्त न लगाओ ! न आकाश में, न अधः में, न ऊर्ध्व में, न दिशा में, न बाहर, न भीतर, न प्राण में, न उर में, न मूर्धा में, न तालु में, न भौंहके मध्य में, न नासिका में, न जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति में, न तम में, न प्रकाश में, न श्याम में, न रक्त में, न पीत में, न श्वेत में, न स्थिर में, न चल में, न आदि में, न अन्त में, न मध्य में, न दूर में, न निकट में, न चित्तादि अन्तःकरण में, न शब्द में, न स्पर्श, रूप, रस, गन्ध में और न कलना, अकलना में चित्त लगावे। सब ओर से चित्त को रोककर चेतनतत्त्व में विश्राम करो द्वैत को लेकर चेतनतत्त्व का आश्रय न करो। हे रामजी ! जब सबसे निराश होगे और आत्मतत्त्व में स्थित होगे तब विगतसंग होगे और जीव का जीवत्व चला जावेगा, केवल चिदात्मा होकर स्थित होगे तब सब व्यवहार करो अथवा न करो, करते भी अकर्ता होगे अथवा इसका भी

त्याग करो, केवल चिदानन्द शान्तरूप जो तत्त्व है उसमें स्थित हो तब अद्वैतरूप तत्त्व स्वाभाविक भासेगा । जैसे बादलों के दूर हुए सूर्य स्वाभाविक भासता है तैसे ही फुरने से रहित होने से चेतनतत्त्व भास आवेगा और जैसे प्रकाशरूप चिन्तामणि स्वाभाविक भासि आता है तैसे ही आत्मप्रकाश स्वाभाविक भास आवेगा । फिर जो कुछ क्रिया तुम करोगे वह सब फलदायक न होगी । जैसे कमल को जल नहीं स्पर्श करता है तैसे तुमको क्रिया न स्पर्श करेगी और चित्त आत्मगति निर्वाण-रूप होगा और क्रियाकर्त्ता भी अकर्त्ता रहोगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे शान्तसमाचारयोगोपदेशो
नाम चतुःषष्टितमस्सर्गः ॥ ६४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! असंसक्त पुरुष ध्यान करे अथवा व्यवहार करे वह सदा ध्यान में स्थित और शोक से रहित है । बाहर से यदि वह क्षोभमान दृष्टि आता है परन्तु हृदय उसका सर्वकलना से रहित है और वह सम्पूर्ण लक्ष्मी से शोभता है । हे रामजी ! जिस पुरुष का चित्त चैत्य से रहित अचल है सो विगतज्वर है, उसको कुछ दुःख स्पर्श नहीं करता । जैसे जल कमलों को स्पर्श नहीं करता और औरों को निर्मल करता है और जैसे निर्मली मलीन जल को निर्मल करती है तैसे ही वह जगत् को निर्मल करता है । जो आत्मतत्त्व में लीन है सो क्षोभमान भी दृष्टि आता है परन्तु क्षोभ, उसे कदाचित् नहीं । जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब क्षोभमान दृष्टि आता है परन्तु सूर्य को कदाचित् क्षोभ नहीं, तैसे ही ज्ञानवान् का चित्त क्षोभायमान दृष्टि आता है पर क्षोभ उसे कदाचित् नहीं । हे रामजी ! आत्मारामी पुरुष बाहर से मोर के पुच्छवत् चञ्चल भी दृष्टि आता है परन्तु हृदय से सुमेरु पर्वत की नाईं अचल है । जिनका चित्त आत्मपद में स्थित हुआ है उनको सुख दुःख अपने वश नहीं कर सकते । जैसे स्फटिक को प्रतिबिम्ब का रङ्ग नहीं चढ़ता तैसे ही ज्ञानवान् को सुख दुःख का रङ्ग नहीं चढ़ता । जिस पुरुष को परावर ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ है उसका चित्त रागद्वेष से रञ्जित नहीं होता । जैसे आकाश में बादल दृष्टि आता है परन्तु आकाश से स्पर्श नहीं करता तैसे ही ज्ञान-

वान् के चित्त को रागद्वेष स्पर्श नहीं करते । जो आत्मध्यानी है और जो परमबोध का साक्षात्कार होकर कलनामल से मुक्त हुआ है वह पुरुष असंसक्त कहाता है । हे रामजी ! जो आत्मारामी पुरुष हैं उनकी आत्म-ज्ञान के अभ्यास से संसक्ता निवृत्त हो जाती है अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता । जब चित्त परिणाम आत्मा की ओर होगा—जैसे चन्द्रमा परिणाम के वश से अमावस्या को सूर्यरूप हो जाता है तब चित्त दृढ़ परिणाम के वश मे आत्मारूप हो जावेगा । जब चित्त चैत्यभाव से हीन होता है तब क्षीणचित्त कहाता है और शान्त कलना कहाता है तब जाग्रत भी सुषुप्तिरूप हो जाता है । उस अवस्था में जो कुछ क्रिया करता है सो फल का आरम्भ नहीं होती, क्योंकि वह तो निरहंकार हो जाता है जैसे यन्त्री की पुतली अहंकार से रहित चेष्टा करती है और संवेदन से रहित है उसको कोई दुःख नहीं होता, तैसे ही निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख और निर्लेप कहाता है । हे रामजी ! इष्ट-अनिष्ट भाव-अभाव-रूपी जगत् चित्त में होता है । जब चित्त आत्मभाव को प्राप्त हुआ तब किससे किसको बन्धन हो तब तो सब आत्मतत्त्व होता है । जैसे नट सर्व स्वाँग को धारता है और अपना अभिमान किसी से नहीं करता तैसे ही सुषुप्ति बोध पुरुष जगत् की क्रिया करता है और बन्धवान् नहीं होता, जीवन्मुक्त होकर स्थित होता है । हे रामजी ! सुषुप्ति बोध का आश्रय करके जगत् की क्रिया करो पर क्रिया, कर्म, कर्त्ता त्रिपुटी की भावना से रहित रहो तब तुमको कुछ दुःख न होगा ग्रहण और त्याग में अभिमान न होगा यथाप्राप्त में स्थित होगे । सुषुप्तिबोध में जो स्थित है सो कर्त्ता हुआ भी कुछ नहीं करता । ऐसे निश्चय को धार करके जैसे इच्छा हो तैसे करो । हे रामजी ! ज्ञानवान् की चेष्टा बालकवत् होती है जैसे बालक अभिमान से रहित पालने में अङ्गों को हिलाता है तैसे ही ज्ञानवान् अभि-मान से रहित कर्म करता है और फल का स्पर्श उसे नहीं होता । जब चित्त अचित्तरूप हो जाता है तब जाग्रत् जगत् सुषुप्तिरूप हो जाता है और जो कुछ क्रिया करता है वह स्पर्श नहीं करती । हे रामजी ! जब जगत् से सुषुप्ति दशा होती है तब हृदय शीतल हो जाता है, रागद्वेष

कुछ नहीं फुरते और आत्मानन्द से पूर्ण होता है और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसे ही वह शोभता है। जो सुषुप्तिबोध में स्थित है वह महातेजवान् होता है और आत्मानन्द से पूर्ण चन्द्रमा की नाईं हो जाता है। हे रामजी ! जो सुषुप्तिबोध में स्थित है वह संसार के किसी क्षोभ से चलायमान नहीं होता—जैसे पर्वत सर्वदा काल में क्षोभायमान नहीं होता और भूकम्प में सब वृक्षादिक चलायमान होते हैं पर अस्ताचल पर्वत कम्पायमान नहीं होता, तैसे ही ज्ञानवान् चलायमान नहीं होता। जैसे पर्वत सब काल में सम रहता है और तरु उगके गिर पड़ता है पर्वत ज्यों का त्यों रहता है तैसे ही ज्ञानवान् अनेक प्रकार की क्रिया में सम रहता है। हे रामजी ! ऐसी सुषुप्तिदशा अभ्यासयोग से प्राप्त होती है। जब यह दशा प्राप्त होती है तब उसको तत्त्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं सो परमानन्दस्वरूप है सो उसमें सब दुःख नष्ट हो जाते हैं और असंसक्त हो जाता है। जब मन का मननभाव निवृत्त हो जाता है तब ज्ञानवान् को परम सुख उदय होता है और उससे वह परमानन्द हो जाता है। जो इस संसार को लीलारूप देखता है और सर्वशोक से रहित निर्भय होता है उससे संसारभ्रम दूर हो जाता है। जब तुरीयापद में प्राप्त होता है तब संसार में फिर नहीं गिरता। जो यत्नवान् पुरुष परमपावनपद में स्थित हुए हैं वे संसार की अवस्था को देखकर हँसते हैं। जैसे पहाड़ पर बैठा पुरुष नगर को जलता देखकर हँसता है तैसे ही ज्ञानवान् आत्मानन्द को पाकर संसार के कार्यों में दुःख जानकर हँसता है। हे रामजी ! तुरीया अवस्था में स्थित होने से अविनाशी होता है और आत्मरूप आत्मबोध से आनन्दित है। जब ऐसे तुरीयापद को प्राप्त होता है तब जन्ममरण के बन्धन से मुक्त होता है और अभिमान आदिक कलना से रहित परमज्योति में लीन होता है। जैसे नमक की गोली समुद्र में जलरूप हो जाती है तैसे ही वह आत्मरूप हो जाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तचिकित्सा-
नाम पञ्चषष्टितमस्सर्गः ॥ ६५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब तक तुरीयापद में स्थित रहता है तब तक केवल जीवन्मुक्त होता है और इससे उपरान्त विदेहमुक्त तुरीयातीत है सो वाणी का विषय नहीं । जैसे आकाश को भुजा से कोई नहीं पकड़ सकता तैसे ही तुरीयातीत वाणी का विषय नहीं । तुरीया विगत से विश्रान्त दूर है विदेह मुक्त से पाता है । अब तुम कुछ काल ऐसी अवस्था में स्थित हो रहो, फिर परमानन्दपद में स्थित होना । हे रामजी ! तुरीयावस्था में जो स्थित हुआ है वह निर्द्वन्द्वभाव को प्राप्त हुआ है । जब तुम अद्वैत दृष्टिरूप सुषुप्ति अवस्था में स्थित होगे तब जगत् के कार्य भी करते रहोगे और सदा पूर्ण रहोगे और तुमको उदय-अस्त का भाव कदाचित् न प्राप्त होगा । जैसे मूर्ति का लिखा चन्द्रमा उदय-अस्त को नहीं प्राप्त होता है तैसे ही तू उदय अस्तभाव को न प्राप्त होवेगा । हे रामजी ! इस शरीर को अपना जानकर जीव रागद्वेष से जलता है और जिस पदार्थ का सन्निवेश होता है उसके नष्ट हुए नष्ट हो जाता है । जैसे मृत्तिका का अन्वय घट में होता है पर घट के नाश हुए मृत्तिका का नाश नहीं होता तैसे ही तुम भ्रम को मत अङ्गीकार करो । तुम सदा ज्यों के त्यों हो तुम्हारा सन्निवेश इसमें कुछ नहीं । इससे ज्ञानवान् देह के नाश हुए शोकवान् नहीं होता और देह के स्थित हुए सुखी भी नहीं होता, क्योंकि उसका देह के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं । जो तत्त्वदर्शी पुरुष है वह यथाप्राप्ति में निर्दोष होकर विचरता है और अभिमानादिक विकारों से रहित निर्मल आकाशवत् है । जैसे शरत्काल की रात्रि में चन्द्रमा से आकाश निर्मल होता है तैसे ही मन की वृत्ति विकारों से रहित होकर आत्मपद में स्थित होती है– संसार की ओर नहीं गिरती । जैसे योग, मन्त्र, तप और सिद्ध से सम्पन्न पुरुष आकाश में उड़ता जाता है वह फिर पृथ्वी पर नहीं गिरता । हे रामजी ! तुम भी अपने प्रकृतभाव में स्थित होकर यथाप्राप्त क्रिया को करते निर्द्वन्द्व रहो । तुम भी अब स्वरूप के ज्ञाता हुए हो और परमपद में जागकर अपने स्वरूप को प्राप्त हुए हो इससे पृथ्वी में विशोकवान् होकर विचरो तब अनिच्छा से इच्छा को त्यागकर शीतल, प्रकाश, अन्धकार तप्त और मेघ से रहित शरत्काल के आकाशवत् निर्मल शोभोगे । हे रामजी ! यह जगत्

चिदानन्दस्वरूप है और आदि अन्त से रहित है। जो अहं त्वं आदिक भ्रम से रहित है उसमें स्थित हो। आत्मा केवल अव्यक्त और चिन्ता से रहित है उसका शरीर के साथ सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा आदिक नाम भी उपदेश व्यवहार के लिए कल्पे हैं, वह तो नामरूप भेद और भय से रहित अशब्दपद है और वही जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है—जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल तरङ्गरूप भासता है सो जल से भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा से भिन्न जगत् नहीं और जैसे समुद्र सब जलरूप है जल से कुछ भिन्न नहीं; तैसे ही सब जगत् आत्मरूप है भिन्न नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं और पट और तन्तु में भेद नहीं तैसे ही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। हे रामजी! द्वैत कुछ वस्तु नहीं, परन्तु मैं तेरे उपदेश के निमित्त द्वैत अङ्गीकार करके कहता हूँ। यह जो शरीर है उसके साथ तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे धूप और छाया का सम्बन्ध नहीं होता और प्रकाश और तम इकट्ठे नहीं होते, तैसे ही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। देह जड़ और मलीन है और दृश्य असत्य है, आत्मा निर्मल, चेतन और सत्य है तो उसका देह से सम्बन्ध कैसे हो? जैसे शीत और उष्ण का परस्पर विरोध है तैसे ही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। जैसे वन में अग्नि लगने से जन्तु जलते हैं तैसे ही भ्रम दृश्यरूप देह में अहंभाव करके जीव जलते हैं। हे रामजी! जैसे दावाग्नि में कुबुद्धि नर जलबुद्धि करे तैसे ही अज्ञानी देह में आत्मबुद्धि करते हैं। जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसे ही आत्मा में देहभाव रखते हैं। हे रामजी! चिदात्मा निर्मल, नित्य और स्वयंप्रकाश है और देह मलीन और अस्थि, मांस और रक्तमय है इसके साथ आत्मा का सम्बन्ध कैसे हो आत्मा में देह का अभाव है—केवल एक अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थित है उसमें द्वैतभ्रम कैसे हो? हे रामजी! स्वरूप से न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है, सर्वसत्ता एक आत्मतत्त्व स्थित है और भीतर बाहर सब वही है। मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं मूढ़ हूँ इस मिथ्यादृष्टि को दूर से त्यागो और आपको केवल आत्मरूप जानकर स्थित हो। यह दृश्य परम दुःख देनेवाला है और इसमें दुःख प्राप्त होवेगा। जैसे तृण और

पहाड़ की और पट और पत्थर की एकता नहीं होती तैसे ही आत्मा और शरीर की एकता नहीं होती। जैसे तम और प्रकाश का संयोग नहीं होता तैसे ही देह और आत्मा का संयोग नहीं होता और दोनों तुल्य भी नहीं होते। जैसे शीत और उष्णता और जड़ और चेतन की एकता नहीं होती तैसे ही शरीर और आत्मा की एकता नहीं होती। हे रामजी! शरीर जो चलता, बोलता है सो वायु के बल से चलता-बोलता है। आठ स्थानों में वायु के बल से, अक्षरों का उच्चार होता है—उर कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ, तालु यही आठ स्थान हैं। क, ख, ग, और घ—इन चारों का उच्चार कण्ठ में होता है। च, छ, ज और झ—इन चारों का तालु स्थान में उच्चार होता है। ट, ठ, ड और ढ—इन वर्गों का मूर्धा में उच्चार होता है, त, थ, द और ध—इनका दाँतों में उच्चार होता है। प, फ, ब, भ और म—इन पाँचों का ओष्ठों में उच्चार होता है और ङ, ञ, न और ण—इनका नासिका में उच्चार होता है। जिह्वामूल का जिह्वा में उच्चार होता है और जिस पद के आदि हकार हो वह हृदय से बोला जाता है। आठों स्थानों में इन वर्गों का वायु से उच्चार होता है और सूक्ष्म नवस्वर का उच्चार होता है पर आत्मा इनसे निर्लेप होता है। जैसे बाँसुरी वायु से शब्द करती है तैसे ही इन पाँचतत्त्वों से शब्द होता है, इनमें आत्माभिमान करना महामूर्खता है। नेत्रादिक इन्द्रियाँ भी वायु से चेष्टा करती हैं, इससे इस भ्रम को त्यागकर आत्म-पद में स्थित हो—आत्मा आकाशवत् सबमें पूर्ण है। जैसे आकाश सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहाँ आदर्श होता है वहाँ प्रतिबिम्ब होकर भासता है तैसे ही आत्मा सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहाँ हृदय होता है वहाँ भासता है। हे रामजी! जहाँ वासना से चित्तरूपी पक्षी जाता है वहाँ आत्मा को ऐसा अनुभव होता भासता है कि मैं यहाँ हूँ। जैसे जहाँ पुष्प होता है वहाँ सुगन्ध भी होती है, तैसे ही, जहाँ चित्त होता है वहाँ अहंभाव भी होता है। जैसे आकाश सब ठौर में है परन्तु जहाँ प्रतिबिम्ब होता है वहाँ भासता है और जैसे जल सब पृथ्वी में है परन्तु भासता वहीं है जहाँ खोदा जाता है तैसे ही आत्मा सब ठौर पूर्ण

है परन्तु भासता वही है जहाँ चित्त है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब सब ठौर है परन्तु जहाँ आदर्श अथवा जल है वहाँ भासता है तैसे ही आत्मा जहाँ तहाँ पूर्ण है परन्तु शुद्ध हृदय में भासता है। आत्मा का प्रतिबिंब चित्त ही में भासता है और वह चित्त आत्मा की सत्ता से जगत् रचना फैलाता है व जैसे सूर्य की किरणें धूप को फैलाती हैं। हे रामजी! भूतों का कारण अन्तःकरण ही है, आत्मतत्त्व तो अतीत है, आदिकारण नहीं है वास्तव में कारण है। जगत् जो सत् भासता है सो अविचार से भासता है। उसी के निवृत्ति का उपाय आत्मज्ञान है। हे रामजी! संसार का कारण अन्तःकरण है और असम्यक्ज्ञान से सत्यरूप भासता है जैसे मरुस्थल में असम्यक्ज्ञान से जल भासता है। जब यथार्थ ज्ञान होता है तब जगत् का कारण चित्त से नष्ट हो जाता है। जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है तैसे ही आत्मज्ञान से चित्त नष्ट हो जाता है। संसार का कारण अपना चित्त ही है इसी का नाम जीव, अन्तःकरण, चित्त और मन है। रामजी ने पूछा, हे महाआनन्द के देनेवाले! इतनी संज्ञा चित्त की कैसे हुई हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वभावरूप एक परमात्मतत्त्व है। जैसे समुद्र, नदियाँ. तरङ्गादि संज्ञा एक जल ही धरता है तैसे ही चित्तादिक अनेक संज्ञा को आत्मा धारता है पर सदा एकरूप है, संवेदन फुरने से अनेक रूप धरता है। जैसे एक जल कहीं तरङ्ग कहीं बुद्बुदे, कहीं जल, कहीं चक्र और कहीं स्थिर–इतनी संज्ञा को धारता है परन्तु सब ही जल रूप है तैसे ही सर्वशक्ति आत्मा सब शरीरों में सर्वरूप होता है। जब स्पन्दकलना दूर होती है तब शुद्धस्वरूप हो भासता है और जहाँ अज्ञान-रूप संसरने को अङ्गीकार करता है तहाँ वही अनन्त आत्मा जीव कहाता है। जैसे केसरी सिंह पिंजड़े में फँसता है तैसे ही यह जीवरूप होता है। हे रामजी! जहाँ अहंभाव फुरता है वहाँ जीव कहाता है जहाँ निश्चय वृत्ति से फुरता है उसको बुद्धि कहते हैं, संकल्प-विकल्प से मन, चिन्ता करने से चित्त, और प्राकृतभाव से प्रकृति कहाता है। हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है वह जड़ कहाता है और चेतन है सो जीव कहाता है। जड़ जो दृश्यभाव में संवित्भाग है और अजड़ जो जीव

अहं सो द्रष्टाभाव से सिद्ध होता है, इनके जो मध्य है सो परमात्मतत्त्व है सो नानारूप हो भासता है। बृहदारण्यकउपनिषद और वेदान्तशास्त्रों में बहुत प्रकार से जीव का रूप कहा है। इससे भिन्न संज्ञा शास्त्रकारों ने कल्पना कर कही है सो वृथा कल्पना है। जब तक अहंभाव से चित्त संसरता है तब तक जगत्भ्रम होता है—जैसे जब तक सूर्य है तब तक प्रकाश होता है और जब सूर्य अस्त होता है तब प्रकाश जाता रहता है तैसे ही जब चित्त का अभाव हुआ तब जगत्भ्रम जाता रहता है। देह में आत्मबुद्धि करनी महामूर्खता है, क्योंकि यह अधःऊर्ध्वसंयोग है जो आत्मा का ऐसा संयोग न हो तो देह के नाश हुए आत्मा भी नष्ट हो जावे, पर देह के नाश हुए आत्मा का तो नाश नहीं होता। जैसे वृक्ष के पत्तों के नाश हुए वृक्ष का नाश नहीं होता और घट के नाश हुए आकाश का नाश नहीं होता तैसे ही शरीर के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे पुरातन वस्त्र को त्यागकर पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है तैसे ही आत्मा पुरातन शरीर को त्यागकर नूतन शरीर अङ्गीकार करता है इसी का नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं, पर शरीर के नाश हुए आत्मा का नाश तो नहीं होता। हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है उसका शरीर जब छूटता है तब उसका चित्त चिदाकाश में लीन हो जाता है और जिसका चित्त वासना सहित है वह एक शरीर को त्यागकर और शरीर पाता है। जो देह नाश हुए अपना नाश मानता है वह मूर्ख है—जैसे स्थाणु में अज्ञान से वैताल भासता है और जैसे माता के स्तनों में मूर्ख बालक को वैताल भासता है तैसे ही अज्ञान से आत्मा मृत्यु भासती है जो इसको अनात्मतत्त्व नाश हो अर्थात् चित्त नाश हो जावे और फिर न फुरे तो आनन्द हो। जो शरीर के नाश हुए आत्मा का नाश कहते हैं वे मूढ़ हैं और मिथ्या कहते हैं। जैसे कोई देश से देशान्तर जाता है तो उसका अभाव नहीं होता तैसे ही एक शरीर को त्यागकर और शरीर को प्राप्त होता है तो आत्मा का नाश नहीं होता। तैसे जल में तरङ्ग फुरके फिर लीन होकर और ठौर में जा फुरते हैं तैसे ही आत्मा एक शरीर को त्यागकर और को धारता है। जैसे पक्षी उड़ता-उड़ता दूर जाता

है तब दृष्टि नहीं आता परन्तु नाश नहीं होता तैसे ही शरीर के नाश हुए आत्मा और ठौर प्रकट होता है नाश नहीं होता। हे रामजी! वासना के वश से वह जीव एक शरीर को त्यागकर और शरीर को प्राप्त होता है। इसी प्रकार वासना के अनुसार जीव फिरता है। वासना-रूपी रस्सी से बँधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानों में भटकता है और कभी ऊर्ध्वलोक और कभी मनुष्यलोक में घटीयन्त्र की नाईं भ्रमता है। हे रामजी! जीव के हृदय के जो वासना होती है उसी से जरा मृत्यु, जन्म आदि का दुःख पाता है और कर्मरूपी भार उठाकर कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी मध्यस्थान में जाता है, शान्ति कदाचित् नहीं पाता। इससे हे रामजी! अविद्यारूपी जो संसार है इसको भ्रमरूप जानकर इसकी वासना को त्याग करो और अपने स्वरूप में स्थित हो। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्त हुआ तो सभा स्नान के निमित्त उठी और परस्पर नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को गये फिर रात्रि बिताके सूर्य की किरणों के निकलते ही आ बैठे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगोपदेशो नाम षट्षष्टितमस्सर्गः ॥६६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा देह के उपजे से नहीं उपजता और नाश हुए से नष्ट नहीं होता इसलिये तुम निष्कलङ्क आत्मा हो तुमको देह के साथ सम्बन्ध कदाचित् नहीं। जैसे कुञ्ज में फूल और फल और घट में घटाकाश होता है सो परस्पर भिन्नरूप होते हैं, एक के नाश हुए दूसरे का नाश नहीं होता, तैसे ही देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता। जो देह के नाश में अपना नाश मानता है वह मूर्ख जड़ है, उस अर्धचेतना को धिक्कार है। हे रामजी! जैसे रथ, रस्सी और घोड़े का स्नेह से रहित संयोग होता है तैसे ही शरीर और इन्द्रियों का संयोग है। हे रामजी! रथ टूटे से जैसे रथवाहक की हानि नहीं होती तैसे ही देह और इन्द्रियों का नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे पृथ्वी और पहाड़ पर जल के प्रवाह का संयोग होता है और वियोग भी होता है

सो एक के नाश हुए से दूसरे का नाश नहीं होता तैसे ही देह और इन्द्रियों का संयोग है पर इनके नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता जैसे स्थाणु में वैताल भासता है और भयवान् होता है तैसे ही देह में अहंभाव से राग, द्वेष, सुख, दुःख पाता है। जैसे एक काष्ठ की अनेक पुतली होती हैं सो काष्ठ से इतर कुछ नहीं है तैसे ही जो कुछ शरीर है वह पञ्चभूतों का है, पञ्चभूतों से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जब यह पञ्चभूतों का शरीर पञ्चभूतों में लीन होता है तब उसको मृतक हुआ कहते हैं। यह आश्चर्य है, जो प्रत्यक्ष पञ्चभूतों का शरीर है उसमें आत्मभावना श्वान करते हैं और फिर हर्ष और शोक को प्राप्त होता है इसी से मूर्ख है। हे रामजी ! न कोई पुरुष है और न कोई स्त्री है पर इनके निमित्त मूढ़ रुदन करते हैं। जैसे मृत्तिका के हाथी घोड़ा आदिक खिलौने विचित्र रचना होती है और उसकी प्राप्ति में अज्ञानी बालक तुष्टवान् और खेदवान् होता है तैसे ही अज्ञानी पाञ्चभौतिक रचना देखकर उसकी प्राप्ति में राग द्वेष करता है ज्ञानवान् को सब भूत पदार्थ भ्रांतिमात्र भासते हैं। जैसे माटी के खिलौनों को आपस में मिलने से राग द्वेष कुछ नहीं होता तैसे ही बुद्धि, इन्द्रियाँ, मन से आत्मा की जो असंगता है इससे राग द्वेष नहीं रहता। जैसे पाषाण की पुतलियाँ मिलती हैं तो उनको स्नेह बन्धन कुछ नहीं होता तैसे ही देह, इन्द्रियाँ, प्राण और आत्मा का आपस में सङ्ग बुद्धि से रहित हैं। इससे तुम स्नेह से रहित हो रहो, शोक काहे को करते हो। जैसे तृण और जल के तरङ्ग का संयोग होता है तो तृण इधर उधर जाता है और जल को कुछ हर्ष शोक नहीं होता तैसे ही देह और आत्मा का योग है इनके मिलाप और बिछुरे का वास्तव में दुःख सुख कुछ नहीं होता। आत्मा और अनात्मा, देह इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि आदिक विलक्षण हैं और परस्पर इनके क्षय और उदय में हर्ष शोक कुछ नहीं परन्तु चित्त के उदय से अनात्मधर्म आत्मा में प्रतिबिम्बित भासता है। तुम तत्त्वबोध करके चित्त को त्याग करके अपने स्वरूप में स्थित हो—जैसे जल तरङ्गभाव को त्यागकर अपने स्थिर स्वभाव को प्राप्त होता है। जब तुम अपने अनोभभाव को प्राप्त

होगे तब भौतिक देह से आपको भिन्न जानोगे। जैसे वायुमण्डल को प्राप्त हुआ पक्षी पृथ्वीमंडल को भी देखता है तैसे ही तुम आत्मपद में स्थित होकर देहादिक को देखोगे। हे रामजी ! तुम देहादिकभूतों को देखके त्याग करो और तुरीयातीत अजन्मा पुरुष हो रहो तब तुम परम प्रकाश को पावोगे। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य के उदय हुए परम प्रकाश को प्राप्त होता है तैसे ही जब बोध करके द्रष्टा, दर्शन, दृश्यभाव तुम्हारा जाता रहेगा तब तुम अपने भाव को ज्यों का त्यों जानोगे। जैसे मनुष्य मद्य से मत्त हो जाता है और मद्य के उतरे से आपको ज्यों का त्यों जानता है और मद्य को स्मरण करता है तैसे ही स्मरण करोगे। आत्मतत्त्व का जो स्पन्द फुरना हुआ है उसी का नाम चित्त है सो अवस्तुरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उदय होते हैं सो कुछ वस्तु नहीं तैसे ही चित्तादिक कुछ वस्तु नहीं, भ्रांतरूप हैं। इस प्रकार जानकर महाबुद्धिमान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुए हैं और महाशान्तपद की प्राप्ति में विचरते हैं। जैसे रत्नमणि की किञ्चन नाना प्रकार की लहर होती है सो मननकलना के सहित यह चमत्कार है तैसे ही मनुष्यों में जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं उनका व्यवहार कलना से रहित होता है जैसे कूप में प्रतिबिम्ब पड़ता है और आकाश में धूलि उड़ती भासती है पर आकाश मलिन नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहार में कर्तृत्व के अभिमान को नहीं प्राप्त होता। जैसे मेघ के आने जाने से समुद्र को रागद्वेष नहीं होता तैसे ही आत्मा ज्ञेय पुरुष को भोगों के आने जाने में राग द्वेष नहीं होता। हे रामजी ! जिस मन में जगत् के किसी पदार्थ की मननवासना नहीं फुरती उस चित्त में जो कुछ फुरना भासता है सो विलासस्वरूप जानो वह उसको बन्धन का कारण नहीं होता और जिस चित्त में अहं त्वं आदिक जगत् की भावना है परन्तु हृदय से उसकी सत्य बुद्धि है उससे वह दृश्य द्रष्टा और दर्शन सम्बन्धी तीनों कालों संयुक्त जगत् को फैलावेगा। जो कुछ दृश्य है वह असत्रूप है और जो सत्य है सो एक अव्यक्तरूप है। उसका आश्रय करके अलेप हो तब हर्ष शोक की दशा कहाँ है ? जो कुछ दृश्यजगत्

भासता है वह सब असत्‌रूप है और जो सत्य है वह सदा ज्यों का त्यों है। असत्‌रूप दृश्य के निमित्त तुम क्यों वृथा मोह को प्राप्त होते हो असम्यक् दर्शन को त्यागकर सम्यक्‌दर्शी हो। हे सुलोचन, रामजी! जो सम्यक्‌दर्शी हैं वे मोह को नहीं प्राप्त होते दृश्य और दर्शन इन्द्रियों के साक्षित्वसम्बन्ध में अर्थात् विषयेन्द्रिय के साक्षिरूप आनन्द का जिसे सुख है वह परब्रह्म कहाता है और अनुत्तम सुख से जो उस संवित् में स्थित है वह ज्ञानवान् है उसको मोक्ष प्राप्त है। जो दृश्य-दर्शन के मिलने में स्थित होता है उस अज्ञानी को वह संवित् संसारभ्रम दिखाती है। दृश्य दर्शन में जो अनुभवसत्ता है वह सुख आत्मरूप है, जो दृश्य के साथ लगा है वह बन्ध है और जो दृश्य से मुक्त हो चैतन्य संवित् में स्थित है वह मुक्त कहाता है। हे रामजी! दृश्य दर्शन के मध्य जो संवित् है वह अनुभवरूप है, उस संवित् का आश्रय करके जो दृश्य-दर्शन से मुक्त है वह संसारसमुद्र से तरेगा। वह सुषुप्तिवत् अवस्था है इसको प्राप्त हुआ परम प्रकाश को प्राप्त होता है और इसी को मुक्त कहते हैं। जो दृश्य-दर्शन से मुक्त है वह मुक्त कहाता है और जो दृश्य-दर्शन के साथ बँधा है वह बन्ध है। अन्य सबों का अनुभव करनेवाला आत्मा है, वह न स्थूल है, न अणु है, न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है, न चेतन है, न जड़ है, न सत्य है, न असत्य है, न अहं है, न त्वं है, न एक है, न अनेक है, न निकट है, न दूर है, न अस्ति है, न नास्ति है, न प्राप्ति है, न अप्राप्ति है, न सर्व है, न असर्व है, न पदार्थ है, न अपदार्थ है, न पाञ्चभौतिक है, न अपाञ्चभौतिक है, जो कुछ दृश्य जाति हैं, सो मन सहित षट् इन्द्रियों से सिद्ध होती है। जो इनसे अतीत है वह इनका विषय नहीं क्योंकि निष्किञ्चनरूप है। यह भी सब वही रूप है और ज्यों का त्यों जाने से सब आत्मारूप है। जगत् अनात्मारूप कुछ नहीं असम्यक्‌ज्ञान से ऐसे भासता है। यह जो कठिनरूप पृथ्वी, द्रवतारूप जल, स्पन्दरूप वायु उष्णतारूप अग्नि और अवकाशरूप आकाश भासते हैं वे सब आत्मरूप हैं। जो कुछ वस्तु-अवस्तुरूप जगत् भासता है सो आत्मसत्ता से भिन्न नहीं आत्मा से भिन्न जगत् को मानना उन्मत्त चेष्टा है और मूर्ख

मानते हैं। महात्मा पुरुषों को कालकलनारूप जगत् सब आत्मरूप है। कल्प से आदि लेकर अन्तपर्यन्त सब आत्मा का चमत्कार है, ऐसे जानकर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो और संसारसमुद्र से तर जाओ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो
नाम सप्तषष्टितमस्सर्गः ॥ ६७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जो मैंने तुझको द्वैत के त्याग की विचारदृष्टि कही है इस विचार से अपना जो आत्मस्वभाव है सो प्राप्त होता है, जैसे बुद्धिमान् को खोजने के अभ्यास से चिन्तामणि प्राप्त होती है। इसके उपरान्त एक और भी परम दृष्टि सुनो जिससे मनुष्य अचल आत्मस्वरूप को देखता है वह यह है कि मैं ही आकाश, दिशा, सूर्य, अधः, ऊर्ध्व, देवता, दैत्य, प्रकाश, तम, मेघ, पर्वत, पृथ्वी, समुद्र, पवन, धूलि, अग्नि आदिक स्थावर जङ्गम जगत् हूँ। हे रामजी ! सर्वजगत् आत्मा ही है तो अहं और त्वं से भिन्न और अनेक और एक कैसे हो। जिसके हृदय में ऐसा निश्चय होता है उसको सब जगत् आत्मरूप भासता है और वह पुरुष हर्षशोक नहीं पाता। सब जगत् मनोमात्र है तो अपना और पराया क्या कहिये? ज्ञानवान् को आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता इससे वह हर्ष विषाद को नहीं प्राप्त होता। हे रामजी ! अहंकार भी तीन प्रकार के हैं। दो प्रकार का तो सात्त्विक निर्मल है, तत्त्वज्ञान से प्रवर्त्तता और मोक्षदायक परमार्थरूप है, और तीसरा संसार दिखाता है। एक तो अहं जो तुमको कहा है कि सर्व मैं ही हूँ–मुझसे अन्य कुछ नहीं और दूसरा यह है कि परम अणु जो सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है सो साक्षीभूत अव्यक्तरूप मैं हूँ–ये दोनों मोक्षदायक हैं और तीसरा यह कि आपको नख-शीशपर्यन्त देहरूप जानना सो दुःखदायक और संसार का कारण है शान्तिसुख का कारण नहीं। अथवा इन तीनों को त्यागकर स्थित हो यह सर्वसिद्धान्त का कारण है। जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसे करो पर आत्मा सबसे अतीत और सबसे परे है तो भी अपनी सत्ता से जगत् को पूर्ण कर रहा है और सबका प्रकाशक वही है। वह अपने अनुभव से सदावस्तु उदयरूप है और

किसी प्रणाम का विषय नहीं, अनुमान आदि प्रमाणों से रहित है और सर्वकाल सबको अपने प्रकाश से प्रकाशता है। यह जो दृश्यजगत् है वह सब आत्मा भगवान् है और दृश्य, दर्शन, सत्, असत्, सूक्ष्म, स्थूल सबसे आत्मा रहित है। वही सर्वरूप, सबकी वाणी कहने में भी वही आता है और किसी से कहा भी नहीं जाता। जो नानात्व भासता है वह भी उससे अन्य नहीं। आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रों ने उपदेश के निमित्त कल्पी हैं। वह सर्वत्र, तीनों कालों में स्थित और प्रकाशरूप है। सूक्ष्मभाव और स्थूलभाव से वही है और सब ठौर व्यापक अपने फुरने से जीवरूप हो भासता है। जब चित्तसंवित् स्फूर्तिरूप होती है तब जीवरूप हो भासता है और फुरने से रहित द्वैतकलना मिट जाती है-जैसे आकाश में पवन फुरता है तब उष्ण शीत हो भासता है तैसे ही फुरने से जीवादिक भासते हैं। आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है और कभी किसी भाव को प्राप्त नहीं होता। जैसे पदार्थ अपने भाव में स्थित है तैसे ही परमेश्वर आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु उसका भासना पुर्यष्टका में होता है। जैसे वायु बिना धूलि नहीं उड़ती और अन्धकार में प्रकाश बिना पदार्थ नहीं भासता तैसे ही पुर्यष्टका बिना आत्मा नहीं भासता पुर्यष्टका में प्रतिबिम्बित भासता है। जैसे सूर्य के उदय हुए सर्वजीवों का व्यवहार होता है सूर्य के अस्त हुए से लीन हो जाता है पर सूर्य दोनों से अलेप है, तैसे ही आत्मा सबका प्रकाशक और निर्लेप है। शरीरों के व्यवहार होने और इष्टता में वह ज्यों का त्यों है, न उपजता है न विनाशता है, न वाञ्छा करता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बन्ध है, सर्वदा सर्वप्रकार ज्यों का त्यों एकरूप है। उस के अज्ञान से जीव अनात्माभाव को प्राप्त होता है-जैसे रस्सी में सर्प भासता है-और केवल दुःखों का कारण होता है। आत्मा आदि अन्त से रहित और अज-अविनासी है और अपने आपसे भिन्न नहीं हुआ इससे देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित है बन्ध नहीं और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे हो ? सर्वकलना से रहित आत्मा सबको अपना आप है पर अविचार से मूढ़ रुदन करते हैं, इससे मैंने जो तुमको उपदेश किया है

उसको आदि से लेकर अन्तपर्यन्त भली प्रकार विचार देखो और इस युक्ति से शोक का त्याग करो–मूर्खों के समान लोगों में शोक मत करो। हे सुमते! बन्धमोक्ष की कल्पना का त्याग करो। न बन्ध के त्याग की इच्छा करो और न मोक्ष के प्राप्ति की इच्छा करो, यन्त्री का पुतला-वत् अभिमान से रहित चेष्टा करो–इसका नाम आत्ममौन है। हे रामजी! मोक्ष आकाश में नहीं और न पाताल में है, न भूमिलोक में है–चित्त का निर्मल होना ही मोक्ष है। अनात्मा के साथ आपको मिलाना और उसमें आत्माभिमान करना यह मल है और इसका त्याग करना और शुद्ध आत्मा में चित्त का लगाना इसका नाम मोक्ष है। जब चित्त से गुणों में वृत्ति का त्याग हो और सम्यक् आत्मज्ञान हो उसी को तत्त्वदर्शी मोक्ष कहते हैं। हे रामजी! जब तक आत्मबोध नहीं होता तब तक यह दीन दुःखी होता है और जब आत्मा का निर्मल बोध होता है तब दुःखों से मुक्त होता है इससे और उपायों को त्याग भक्ति करके मोक्ष की वाञ्छा करो और चिरकाल से जब इस बोध को साध चित्त विस्तृत पद को प्राप्त हुआ तब दश मोक्ष की भी इच्छा नहीं रहती एक मोक्ष तो क्या है। हे रामजी! जीव को और कोई उपाय मोक्ष का नहीं, आत्मबोध को ही पाकर सुखी होगे। जब चित्त अचित्त होता है तब सब जगत्भ्रम मिट जाता है और जगत् भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्व ही है और जो वही है तो बन्ध किसको कहिये और मोक्ष किसको कहिये? बन्ध मोक्ष की कल्पना तुच्छ है उसका त्याग कर चक्रवर्ती हो पृथ्वी की पालना करो तो तुमको कर्तृत्व का स्पर्श कुछ न होगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मविचारो
नामाष्टषष्टितमस्सर्गः ॥ ६८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संकल्प से ही जगत् उपजा है। अज्ञान से आपको शरीर जानता है और अपने संकल्प को उपजा के अपना स्वरूप जानता है। जैसे कोई सुन्दर पुरुष हो और उसको देखे बिना कुरूप जाने तैसे ही आत्मा के साक्षात्कार बिना देहरूप आत्मा को जानता है कि मैं देह हूँ। ज्यों-ज्यों आत्मा का प्रमाद होता है त्यों-त्यों देह में

अधिक अभिमान होता है—जैसे ज्यों ज्यों मद्यपान करता है त्यों-त्यों उन्मत्त होता है। हे रामजी ! यह नाना प्रकार का दृश्य अज्ञान से भासता है। जैसे सूर्य की किरणों से मरुस्थल में जल भासता है तैसे ही असम्यक् ज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है। एक कलना के फुरने से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियाँ और देह भासती हैं, एक फुरने की ही इतनी संज्ञा है। जैसे एक जल की अनेक संज्ञा होती हैं तैसे ही एक फुरने की अनेक संज्ञा हुई हैं। जो चित्त है सो अहंकार है, जो अहंकार है वही मन है और जो मन है वही बुद्धि है। इसमें कुछ भेद नहीं। जैसे बरफ और शुक्लता और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसे ही मन, बुद्धि आदिक में कुछ भेद नहीं, एक के नाश हुए दोनों का नाश हो जाता है। इससे मन में जो कुछ कलना है उसका त्याग कर मोक्ष की इच्छा का भी त्याग करो और बन्धनवृत्ति का भी त्याग करो। हे रामजी! वैराग्य और विवेक का अभ्यास करके मन को निर्मल करो। जब मन निर्मल होगा तब मन का मनभाव नष्ट हो जावेगा। जब यह फुरना फुरता है कि 'मैं मुक्त होऊँ' तब भी मन जग आता है और मन के जागे से मनन भी हो आता है। जब मनन हुआ तब अपने साथ शरीर भी भासि आता है अनेक दुःख भी भासि आते हैं। हे रामजी ! आत्मतत्त्व सबसे अतीत है और सर्वरूप भी वही है तब कौन बन्ध है और कौन मोक्ष है ? जब मन का मनन निवृत्त हुआ तब न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है—आत्मा सर्वक्रिया से अतीत है। क्रिया भी इस प्रकार होती है जैसे कि वायु के हिलने से वृक्ष के पत्र और फूल हिलते हैं तैसे ही प्राणों के फुरने से हाथ पाँव आदिक इन्द्रियाँ चेष्टा करती हैं। हे रामजी ! चैतन्यशक्ति सर्वव्यापी, सूक्ष्म और अचल है, वह न आपही चलती है, न और किसी की प्रेरी हुई चलती है, सदा स्थितरूप है। जैसे मेरु पर्वत न आपही चलता है और न वायु से चलाया चलता है। हे रामजी ! जितने पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित भासते हैं। जैसे सर्वपदार्थों को दीपक प्रकाशता है तैसे ही सब पदार्थों को आत्मा प्रकाश करता है। सब पदार्थों में एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है और अहं त्वं आदिक कलना से रहित है जहाँ अहं त्वं आदिक

कलना नहीं फुरती वहाँ सुख दुःख भी नहीं फुरता। जैसे वृक्षों और पहाड़ों से अहं त्वं शब्द नहीं फुरता तैसे ही आत्मा में भी नहीं फुरते इससे ज्ञानवान् में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते। हे रामजी! आत्मा निरहंकार और निराकार उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवे? आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व अज्ञान से भासता है—जैसे मरुस्थल में जल भासता है। हे रामजी! अज्ञानरूप मदिरा-पान करके मनरूप मृग मत्त हुआ है उससे वह सत् असत् का विचार नहीं कर सकता—जैसे मृगतृष्णा की नदी असत् ही सत् भासती है और मृग उसको सत् जानकर पान करने के निमित्त दौड़ता है, तैसे ही यह जीव अरूप संसार को रूप जानकर दौड़ता है। जब आत्मसत्ता का सम्यक्बोध होता है तब यह अविद्या नष्ट हो जाती है। जैसे ब्राह्मणों के मध्य चाण्डाली आन बैठे और जब ब्राह्मण उसको पहिचाने कि यह चाण्डाली है तो वह छिप जाती है तैसे ही जब अविद्या को जाना तब वह नष्ट हो जाती है। हे रामजी! जब अविद्या को ज्यों की त्यों जाना तब अविद्यारूपी जगत् मन को नहीं खैंच सकता जैसे मृगतृष्णा की नदी को जब जाना तब तृषी हो तो भी मन को वह जल नहीं खैंच सकता। हे रामजी! जब परमार्थसत्ता का बोध होता है तब मूल से वासना नष्ट हो जाती है, जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है तैसे ही आत्मज्ञान से अविद्या वासनासहित नष्ट हो जाती है। हे रामजी! अविद्या अविचार से सिद्ध है जब सत्शास्त्रों की युक्ति से विचार प्राप्त होता है तब अविद्या नष्ट हो जाती है। जैसे बरफ का कणका घूप से गलकर जलमय हो जाता है तैसे ही विचार से अज्ञान नष्ट हो जाता है। हे रामजी! देह जड़ है और आत्मा सदा चेतनरूप है, फिर जड़ देह के निमित्त भोगों की वाञ्छा करनी बड़ी मूर्खता है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस बन्धन को तोड़ डालते हैं। हे रामजी! आशारूपी फाँसी को हृदय से काटो जब आशारूपी आवरण दूर होगा तब पूर्णमासी के चन्द्रमावत् हृदय शीतल हो जावेगा। तैसे ही यह पुरुष भी तीन तापों से मुक्त शीतल हो जाता है—जैसे पर्वत में अग्नि लगे और उसके ऊपर जल की बहुत वर्षा हो वह तप्तता से मुक्त हो शान्तिमान् होता है।

हे रामजी ! जैसे केशरी सिंह पिंजड़े को तोड़कर निकलता है तैसे ही ज्ञानवान् पुरुष भोगवासना के बन्धन को तोड़ डालता है। हे रामजी ! जैसे रङ्क को त्रिलोकी का राज्य मिलने से वह आनन्द को प्राप्त हो तैसे ही ज्ञानवान् को आत्मा के साक्षात्कार हुए आनन्द प्राप्त होता है और वह परम निर्मल लक्ष्मी से शोभता है जब हृदय से आशारूपी मैल जाता है तब जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल शोभता है तैसे ही वह शोभता है। हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष अपने आपमें नहीं समाता—जैसे महाकल्प का समुद्र नहीं समाता और जैसे मेघ जल को त्यागकर मौन हो जाता है तैसे ही ज्ञानवान् आशा को त्यागकर आत्ममौन हो जाता है। जैसे अग्नि लकड़ी को जलाकर धुएँ से रहित अपने आपमें स्थित हो जाती है तैसे ही चित्त की वृत्ति से रहित हुआ आत्मपद में निर्वाण हो जाता है जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है तैसे ही निर्वाण हुआ परमानन्द को प्राप्त होता है। जैसे अमृत को पानकर पुरुष आनन्दवान् होता है तैसे ही वह परमानन्द से पूर्ण अपने आपमें प्रकाशता है जैसे वायु से रहित दीपक प्रकाशता है और शुद्ध मणि अपने प्रकाश से प्रकाशती है तैसे ही ज्ञानवान् अपने आप-से प्रकाशता है। मैं सर्वात्मा, सर्वगत, ईश्वर, सर्वाकार, निराकार, केवल चिदानन्द आत्मा हूँ और सदा अपने आपमें स्थित हूँ। हे रामजी ! ज्ञानी अपने आपको ऐसे जानते हैं और पूर्व के व्यतीत हुए दिन को हँसते हैं। मैं तो अनन्त आत्मा हूँ माया के भ्रम से आपको कर्ता भोक्ता मानता था। ऐसे जानकर जो रागद्वेष से रहित परम शान्ति को होता है उसके सब ताप निवृत्त हो जाते हैं, उसकी सदा आत्मा में प्रीति रहती है, उसका चित्त सब ओर से पूर्ण हो जाता है, वह सबको पवित्र करनेवाला होता है, वह कामरूपी चक्र से मुक्त होकर जन्मों के बन्धन काट डालता है, राग द्वेष आदिक द्वन्द्व और सर्वभय से मुक्त होता है, अविद्यारूपी संसारसमुद्र से तर जाता है, उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त होता है अर्थात् परमपद पाता है और फिर संसार के जन्म-मरण को नहीं प्राप्त होता और उसके कर्मों का अन्त हो जाता है। हे रामजी ! ज्ञानवान् की क्रिया को देखकर और सब वाञ्छा करते हैं परन्तु औरों की क्रिया को देखकर ज्ञानवान् किसी की

वाञ्छा नहीं करता । वह सबको आनन्दवान् करता है और आप किसी से आनन्दवान् नहीं होता । वह न किसी को देता है, न लेता है, न किसी की स्तुति करता, न निन्दा करता है, न किसी उत्तम पदार्थ को पाकर उदय होता है और न अनिष्ट को पाकर नष्ट होता है और हर्ष-शोक से रहित है । उसने सब फल का त्याग किया है और उपाधि से रहित है और कर्तृत्व भोक्तृत्व से आपको न्यारा मानता है । ऐसा जो पुरुष है वह जीवन्मुक्त है । हे रामजी ! जब तुम सब इच्छा त्यागकर मौन हो तब निर्विशेषभाव को प्राप्त होगे । जैसे मेघ जल का त्यागकर मौनभाव को प्राप्त होता है तैसे ही तू मोक्षभाव को प्राप्त होगा । हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्री को कण्ठ में लगाकर आनन्दवान् होता है पर उसको ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा आनन्द निर्वासनिक पुरुष को होता है, फूल के गुच्छे से वसन्तऋतु ऐसी नहीं शोभती जैसे उदारबुद्धि आत्म मौनवान् शोभता है, हिमालय पर्वत में प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा निर्वासनिक पुरुष का मन शीतल होता है, मोतियों की माला से और केले के वन को प्राप्त हुआ भी ऐसा सुख नहीं पाता और चन्दनों के पान करनेवाला भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है और चन्द्रमा के स्पर्श से भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसे निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है । चन्द्रमा बाहर की तप्तता मिटाता है परन्तु भीतर की तप्तता निवृत्त नहीं करता पर निराशता से हृदय की तप्तता मिट जाती है और परम शान्ति को प्राप्त होता है । जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुष के संग से होती है तैसी और किसी उपाय से नहीं प्राप्त होती । हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्ग में नहीं प्राप्त होता और न सुन्दर स्त्रियों के स्पर्श से होता है जैसा सुख निर्वासनिक को प्राप्त होता है । निर्वासनिक पुरुष उस सुख को प्राप्त होता है जिस सुख में त्रिलोकी के सुख तृणवत् भासते हैं । हे रामजी ! आशारूपी कुञ्ज के वृक्ष के काटने को उपशमरूपी कुल्हाड़ा है जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है उसको सब पृथ्वी गोपद के समान तुच्छ भासती है, मेरु पर्वत एक टूटे वृक्ष के समान भासता है और दिशा डिब्बी के समान भासती है, क्योंकि वह उत्तम पद को प्राप्त हुआ है और

त्रिलोकी की विभूति तृण की नाईं तुच्छ देखता है। जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है वह जगत् को देखकर हँसता और कदाचित् उसे जगत् के पदार्थों की कल्पना नहीं फुरती। तृणवत् जानकर उसने जगत् को त्याग दिया है और सदा आत्मतत्त्व में स्थित है उसको किसकी उपमा दीजिये उस पुरुष के उदय, अस्त, अहं, त्वं आदिक कलना नष्ट हो गई है और केवल आत्मस्वभाव को प्राप्त हुआ है। उस ईश्वर आत्मा को कौन तौल सकता है, जब दूसरा उसके समान हो तब तौले। हे रामजी ! वह पुरुष सब सङ्कटों के अन्त को प्राप्त हुआ है। यह जगत् मिथ्या भ्रम-रूप है। जैसे आकाश में भ्रम से दूसरा चन्द्रमा, मरुस्थल में नदी और मद्यपान से नगर भ्रमता भासता है, तैसे ही यह मिथ्या जगत् भ्रम से भासता है इसकी आशा मत करो। तुम तो बुद्धिमान् पंडित हो मूर्खों की नाईं मोह को क्यों प्राप्त होते हो ? यह मैं और यह मेरा अज्ञान से भासता है, इस कलना को चित्त से दूर करो। यह वास्तव में कुछ नहीं, सब जगत् आत्मरूप है और नानात्व कुछ नहीं है जो सम्यक्दर्शी पुरुष है वह जगत् को एकरूप जानकर धैर्यवान् रहता है कदाचित् खेद नहीं पाता। हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है आत्मविचार से आत्मपद को प्राप्त हुआ है उसको देखकर मोहनेवाली माया भी भाग जाती है और निकट नहीं आती। जैसे सिंह के निकट मृग नहीं आता तैसे ही ज्ञानवान् के निकट माया नहीं आती। सुन्दर स्त्रियाँ, मणि, कञ्चनादिक धन और पत्थर, काष्ठ सब उसको तुल्य भासता है, भोगों से उसको सुख नहीं होता और आपदा से खेद नहीं होता, वह सदा ज्यों के त्यों रहता है। जैसे पर्वत वायु से चलायमान नहीं होता तैसे ही वह पुरुष सुख दुःख से चलायमान नहीं होता। सुन्दर बाला स्त्री उसके चित्त को खींच नहीं सकती, कामदेव के चलाये बाण उसके ऊपर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और रागद्वेष उसको खींच नहीं सकते। वह सदा आपको निराकार, अद्वैत, निष्क्रिय और निर्गुण जानता है और सुन्दर बगीचे, ताल, बेलि, शय्या, इन्द्रियों के विषयभोग और दुःख देनेवाले उसको तुल्य हैं रागद्वेष को नहीं प्राप्त करते। जैसे ऋतु के अनुसार मीठा और कटु फल होता

है तो उसको किसी में रागद्वेष नहीं होता अकस्मात् जो भोग प्राप्त होता है उसको वह भोगता है परन्तु हर्ष और शोकवान् नहीं होता । हे रामजी ! यथार्थदर्शी इष्ट अनिष्ट से चलायमान नहीं होता—जैसे वसन्तऋतु के आने जाने में पर्वत सुख दुःख को प्राप्त नहीं होता । वह कर्मइन्द्रियों से कर्म करता है परन्तु उसमें आसक्त नहीं होता और बाहर दृष्टि से आसक्त भासता है परन्तु भीतर आसक्त नहीं होता । वह जो बाहर आसक्तदृष्टि नहीं आता परन्तु चित्त आसक्त है वह डूबता है—जैसे शुद्ध मणि कीचड़ में दृष्टि आती है तो भी उसको कुछ कलङ्क नहीं और जो बीच से खोटी है वह यदि बाहर से उज्ज्वल भी भासती तो भी सकलङ्क है, तैसे ही जो चित्त से आसक्त है वह आसक्त है और जो चित्त से आसक्त नहीं वह आसक्त नहीं । हे रामजी ! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप, नित्य, शुद्ध और परमानन्द स्वरूप है जिस पुरुष को अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान है उसको विस्मरण नहीं होता । हे रामजी ! जिसके शरीर से अहं भाव उठ गया है और इन्द्रियों से कर्म करता है तो वह करता भी नहीं करता और जिसके देह में अहंभाव है वह नहीं करता भी करता है । जैसे किसी को चिरकाल के उपरान्त बान्धव मिला विस्मरण नहीं होता तैसे ही जिसने अपना स्वरूप जाना है उसको वह फिर विस्मरण नहीं होता । हे रामजी ! जिनको शुद्धस्वरूप का सम्यक ज्ञान होता है उनको भ्रान्ति-रूप जगत् नहीं भासता—जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है पर जब भ्रम निवृत्त हुआ तब ज्यों की त्यों रस्सी भासती है सर्प नहीं भासता । जैसे मरुस्थल में जलबुद्धि निवृत्त हुए फिर जलबुद्धि नहीं होती, तैसे ही आत्मा के जाने से देहभाव नहीं होता । जैसे पहाड़ से नदी उतरती है सो फिर पहाड़ पर नहीं चढ़ती और सुवर्ण का खोट अग्नि से जला हुआ चाहे कीचड़ में डालिये फिर खोटा नहीं होता तैसे ही जब हृदय की चिद्ग्रन्थि टूटी तब गुणों के व्यवहार में गाँठ नहीं पड़ती अर्थात् बन्धायमान नहीं होता । जैसे वृक्ष से टूटा फल फिर नहीं लगता तैसे ही जिसका देहाभिमान टूटा है उसको फिर अभिमान नहीं होता । जैसे लोहे के हथौड़े से पारे को चूर्ण किया तो फिर वह नहीं फुरता ।

जिस पुरुष ने अविद्या को जाना है वह फिर उसकी संगति नहीं करता और जिस ब्राह्मण ने चाण्डालों की सभा जानी फिर वह उनकी संगति नहीं करता, तैसे ही आत्मविचार से मन को चूर्ण किया तब फिर वह नहीं फुरता । जिस पुरुष ने अविद्यारूप जगत् को जाना है वह फिर जगत् के पदार्थों में आसक्त नहीं होता । हे रामजी ! विष जो मधुर जल से मिला हो तो जबतक जाना नहीं तब तक उसको कोई पान करता है और जब उसको जाना तब फिर पान नहीं करता तैसे ही जब तक इस संसार को ज्यों का त्यों नहीं जाना तब तक इसके पदार्थों की इच्छा करता है पर जब जाना कि यह मायामात्र है तब इसकी इच्छा नहीं करता । हे रामजी ! सुन्दर स्त्री जो नाना प्रकार के वस्त्र और भूषणों सहित दृष्टि आती है उनको ज्ञानवान् जानता है कि ये अस्थि, मांस, रुधिर आदिक की पुतलियाँ बनी हैं और कुछ नहीं जो उनकी इच्छा त्यागता है तो वह विरक्त हो जाता है । जैसे मूर्ति पर नील, पीत, श्यामरङ्ग लिखे होते हैं तैसे ही उनके वस्त्र और केश हैं । हे रामजी ! जिस पुरुष को आत्मा का साक्षात्कार होता है उसको जगत् में वस्तु-बुद्धि नहीं होती । अवस्तु में वस्तुबुद्धि तब होती है जब वस्तु का विस्मरण होता है सो ज्ञानवान् को तो सदा स्वरूप का स्मरण है उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि कैसे हो ? जिसको आत्मबुद्धि हुई है उसको विस्मरण नहीं होता । जैसे किसी पुरुष ने किसी के पास गुड़ रक्खा हो और वह खा जावे तो उसको वह दण्ड आदि दे सकेगा परन्तु उसका रस दूर नहीं कर सकता, तैसे ही जिसको आत्मा का अनुभव हुआ है उसको कोई कुछ नहीं कर सकता । हे रामजी ! जैसे कुलटा नारी का किसी पुरुष से चित्त लगता है तो वह गृह का कार्य भी करती है परन्तु चित्त उसका सदा उसमें ही रहता है, तैसे ही ज्ञानवान् क्रिया करता है परन्तु उसका चित्त सदा आत्मपद में रहता है और जैसे परव्यसनी नारी को उसका भर्त्ता दण्ड भी देता है पर तो भी स्पर्श का सुख उसके हृदय से दूर नहीं कर सकता, तैसे ही जिसको आत्मअनुभव हुआ है उसको कोई दूर नहीं कर सकता और जो देवता और दैत्य दूर नहीं कर सकते

तो औरों की क्या वार्त्ता है । जो बड़े सुख अथवा दुःख का प्रवाह आन पड़े तो भी उनको स्पर्श नहीं कर सकता, कर्त्ता हुआ भी वह अकर्त्ता है । जैसे परव्यसनी नारी परपुरुष के संयोग से सुख पाती है परन्तु उसको स्पर्श के सुख का अनुभव हुआ है उसके संकल्प से अखण्ड अनुभव करती है उससे उसको दुःख कुछ नहीं भासता, तैसे ही जिसको आत्मसुख हुआ है उसको दुःखसुख कुछ नहीं भासते । हे रामजी ! सम्यक्ज्ञान से जिसकी अविद्या नष्ट हुई है वह दुःख नहीं देखता । जो उसके अंग काटे जावें तो भी उसको दुःख नहीं होता और शरीर के नष्ट हुए वह नष्ट नहीं होता सुख दुःख उसके नष्ट हो गये हैं और सदा वह आत्मपद में निश्चय रखता है । संकटवान् भी वह दृष्ट आता है परन्तु उसका संकट कोई नहीं । वह वन में रहे अथवा गृह में रहे, व्यवहार करे अथवा समाधि करे, वह सदा ज्यों का त्यों रहता है उसको खेद कष्ट किसी प्रकार से नहीं होता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे नीरास्पदमौनविचारो नामैकोनसप्ततितमस्सर्गः ॥६९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! राजा जनक राजव्यवहार करता था परन्तु आत्मपद में स्थित था इससे उसको कलङ्क न हुआ और सदा विगतज्वर ही रहा, तुम्हारा पितामह राजा दिलीप भी सर्व आरम्भों को करता रहा परन्तु रागद्वेष को न प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होके चिर-पर्यन्त पृथ्वी का राज्य करता रहा, राजा अज नाना प्रकार के युद्ध और राजव्यवहार की पालना करता हुआ सदा जीवन्मुक्त स्वभाव में स्थित था, राजा मान्धाता नाना प्रकार की युद्ध चेष्टा करता था परन्तु सदा परमपद में स्थित रहा और कदाचित् मोह को न प्राप्त हुआ, राजा वलि महात्यागी पाताल में राजव्यवहार को करता भी दृष्ट आया परन्तु स्वरूप के ज्ञान से सदा शान्तरूप जीवन्मुक्त होकर विचरता था, नभचर दैत्यों का राजा सदा नाना युद्ध आदिक क्रिया में रहा करता था और देवताओं के साथ सदा विरोध रखता था परन्तु हृदय में उसके कुछ ताप न था । इन्द्र ने युद्ध में वृत्रासुर दैत्यों को मारा, सदा शीतल रहा कदाचित् क्षोभ को न

प्राप्त हुआ और दैत्यों का राजा प्रह्लाद पाताल में राज्य करता रहा परन्तु हृदय में उसे कुछ क्षोभ न आया । हे रामजी ! सम्बर नामक दैत्य अपनी सृष्टि के रचने को उदय हुआ पर रचने में बन्धवान् था वह सदा साम्बरी मायापरायण रहा और माया से एक मायावीरूप होकर स्थित हुआ । हे रामजी ! यह संसार जो साम्बरी मायारूप है उसको साम्बरीवत् त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो । विष्णु भगवान् सदा दैत्यों को मारते और युद्ध करते रहते हैं पर हृदय में अल्पबुद्धि है इससे सदा सुखी जीवन्मुक्त हैं और मुर दैत्य ने विष्णु से युद्ध में शरीर छोड़ा परन्तु हृदय में उसे से कुछ सम्बन्ध न था इससे जीवन्मुक्त सुखी रहा और पीड़ा को न प्राप्त हुआ । हे रामजी ! सब देवताओं का मुख अग्नि है सो यज्ञलक्ष्मी को चिरकाल पर्यन्त भोगता है परन्तु ज्ञानवान् है इससे क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है । देवता सदा चन्द्रमा की किरणों से अमृत पान करते हैं परन्तु चन्द्रमा को कुछ क्षोभ नहीं होता और देवगुरु बृहस्पति ने स्त्री के लिये चन्द्रमा से युद्ध किये और देवताओं के निमित्त नाना प्रकार के कर्म करते हैं परन्तु रागद्वेष को नहीं प्राप्त होते इससे जीवन्मुक्त हैं । हे रामजी ! दैत्यों के गुरु शुक्रजी दैत्यों के निमित्त सदा यत्न करते रहते हैं और लोभी की नाईं अर्थ चिन्तते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं । जो हृदय से सदा शीतल रहता है वह कदाचित् खेद नहीं पाता । पवन प्राणियों के अंगों को चिरकाल फेरता है और चेष्टा करता है पर खेद को नहीं प्राप्त होता इससे जीवन्मुक्त है । ब्रह्मा सदा लोकों को उत्पन्न करता है और प्रलयपर्यन्त इसी क्रिया में रहता है परन्तु उसे स्वरूप का साक्षात्कार है इससे जीवन्मुक्त है । विष्णु भगवान् युद्धादिक द्वन्द्वों में रहते हैं और जरामृत्यु आदिक भावों को प्राप्त होते हैं परन्तु सदा मुक्तस्वरूप हैं सदाशिव त्रिनेत्र अर्धाङ्गधारी हैं परन्तु हृदय में संयुक्त नहीं हैं इससे जीवन्मुक्त हैं । गौरी मोतियों की माला कण्ठ में धारती हैं और त्रिनेत्र को सदा मालावत् कण्ठ में रखती हैं परन्तु हृदय से शीतल रहती हैं इससे जीवन्मुक्त हैं । स्वामिकार्तिक दैत्यों के साथ युद्ध करते रहे परन्तु ज्ञानरूपी रत्नों के समुद्र थे और हृदय से शीतल थे ।

सदाशिव के शृङ्गीगण अपना रक्त मांस माता को देते थे परन्तु धैर्य में थे इससे खेद को न प्राप्त हुए और नाना प्रकार की क्रिया करते थे परन्तु जीवन्मुक्त थे इससे सदा सुखी थे। नारद मुनि सदा मुक्तस्वभाव हैं और सदा जगत् की क्रियाजाल में रहते हैं परन्तु क्षोभ नहीं पाते इससे जीवन्मुक्त हैं। मनमौन जो विश्वामित्र हैं वे वेदोक्त कर्म करते फिरते रहते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं। सूर्य भगवान् को दिन प्रकाश करते हैं और फिरते रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्त और सदासुखी रहते हैं। यह सदा जीवों को दण्ड करते रहते हैं और क्षोभ में रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं। इन्द्र कुबेर से आदि लेकर त्रिलोकी में बहुत जीवन्मुक्त हैं जो व्यवहार में शीतल हैं। कोई मूढ़ शिलावत् हो रहे हैं, कोई परम बोधवान् वन में जा स्थित हुए हैं—जैसे भृगु, भारद्वाज और विश्वामित्र, बहुतेरे चिरकालपर्यन्त राजपालन करते रहते हैं—जैसे जनक, मान्धाता आदि, कोई आकाश में बड़ी कान्ति धारकर बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र, सप्तर्षि आदि का स्थित हुए हैं, कोई स्वर्ग में अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक हैं, पाताल में जीवन्मुक्त प्रह्लादादिक हुए हैं। कोई देवतारूप धारकर आकाश में स्थित हैं कोई मनुष्यरूप धारकर मनुष्यलोक में स्थित हैं और कोई तिर्यक्योनि में स्थित हैं उनको सर्वथा सर्वप्रकार सर्व में सर्वात्मारूप ही भासता है, कुछ भिन्न नहीं भासता। नाना प्रकार का व्यवहार है सो भी अद्वैत से किया है। हे रामजी ! दिव्य विष्णु, विधाता, सर्व ईश्वर और शिव आदिक सब आत्मा के ही नाम हैं। वस्तुरूप में जो अवस्तु है और अवस्तु में जो वस्तु है सो अवस्तु से वस्तु तब निकलता है जब युक्ति होती है और वस्तु से अवस्तु भी युक्ति से ही दूर होती है। जैसे अवस्तुरूप, रेत से सुवर्ण युक्ति से निकलता है और वस्तुरूपी सोने से मैल युक्ति से दूर होता है तैसे ही अवस्तुरूप देहादिकों में वस्तुरूप आत्मा शास्त्रों की युक्ति से पाता है और वस्तुरूप आत्मा से दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रों की युक्ति से दूर होती है। हे रामजी ! जो पापों से भय करता है वह जब धर्म में प्रवर्तता है तब निर्भय होता है और दुःखों के भय से जीव आत्मपद की ओर प्रवर्तता है तब भावना के वश से असत् से सत् पाता

है । ध्यान और योग भी सूक्ष्म है यत्न के बल से उनसे सत् को पाता है और जो असत् है वह उदय होकर सत् भासता है । जैसे बाजीगर की बाजी और शश के सींग भासि आते हैं तैसे ही आत्मा में अद्वैरूप जो जगत् है सो अज्ञान से दृढ़ हो भासता है परन्तु कल्प के अन्त में यह भी नष्ट हो जाता है । हे रामजी ! यह जो सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रादिक हैं उनके नाम भिन्न-भिन्न रहेंगे और बड़े सुमेरु आदिक पर्वत, समुद्र और भाव पदार्थ जो उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ भासते हैं वे सब नाश हो जावेंगे, क्योंकि सब मायामात्र है, कोई न रहेगा । ऐसे विचार करके इनके भाव अभाव में हर्ष शोक मत करो और समताभाव को प्राप्त हो । हे रामजी ! जो असत् है वह सत् की नाईं भासता है और जो सत् है वह असत् की नाईं भासता है इससे यथार्थ विचारकर सत्रूप आत्मपद में स्थित हो रहो और असत्रूप जगत् की आस्था त्याग के समताभाव को ग्रहण करो । इस लोक में जो अविवेक मार्ग में विचरता है वह मुक्त नहीं होता । इस प्रकार कोटि जीव संसारसमुद्र में डूबते हैं और जो विवेक में प्रवर्तते हैं वे मुक्त होते हैं । हे रामजी ! जिसका मन क्षय हुआ है उनको मुक्तरूप जानो और जिसका मन क्षय नहीं हुआ वह बन्धन में है । इससे जिसको सर्व दुःख से मुक्ति की इच्छा हो सो आत्मा का विचार करे उसी से सब दुःख नष्ट हो जावेंगे । हे रामजी ! दुःखों का मूल चित्त है और जब तक चित्त है तब तक दुःख है, जब चित्त नष्ट हो जाता है तब दुःख सब मिट जाते हैं । हे रामजी ! जब आत्मज्ञान होता है तब चित्त का अभाव हो जाता है, दुःख सब मिट जाता है और राग, इच्छा सब भय मिटकर केवल शान्तरूप होता है । जनक आदि जो जीवन्मुक्त हुए हैं सो निराग और निस्सन्देह होकर महाबोधवान् व्यवहार भी करते रहे परन्तु सदा शीतल चित्त रहे । इससे तुम भी विवेक से चित्त को लीन करो । हे रामजी ! मुक्त भी दो प्रकार की है—एक जीवन्मुक्ति है और दूसरी विदेहमुक्ति । जो पुरुष सब पदार्थों में असंसक्त है और जिसका मन शान्त हुआ है वह मुक्ति कहाता है और जिस पुरुष का ज्ञान से सब पदार्थों में स्नेह नष्ट हुआ है और व्यवहार करता दृष्ट आता है तो भी शीतलचित्त है वह जीवन्मुक्त

कहाता है। जो पुरुष सर्वभाव अभाव पदार्थों को त्यागकर केवल अद्वैत तत्त्व को प्राप्त हुआ है और जिसकी शरीर आदि कोई क्रिया दृष्टि नहीं आती वह विदेहमुक्त कहाता है जिसका स्नेह पदार्थों से दूर नहीं हुआ वह मुक्ति के अर्थ भी यत्न करता है तो भी बन्ध कहाता है जो युक्तिपूर्वक यत्न करता है उसको दुस्तर भी सुगम हो जाता है और जो युक्ति से रहित यत्न करता है उसको गोपद भी समुद्र हो जाता है। हे रामजी। जिन्होंने आत्मविचार किया है उनको विस्तृत जगत्समुद्र गोपद हो जाता है और अज्ञानी को गोपद भी दुस्तर हो जाता है उसे कोई इष्ट अनिष्ट अल्प भी प्राप्त होता है तो उसमें डूब जाता है निकल नहीं सकता। उसको गोपद भी समुद्र है। ज्ञानी को अत्यन्त विभूति और ऐश्वर्य मिले अथवा उसका अभाव हो जावे तो भी वह उसमें रागद्वेष करके नहीं डूबता। हे रामजी ! अपने प्रयत्न के बल सब होता है, जो कोई प्रधान हुआ है वह प्रयत्न-रूपी वृक्ष के फल से ही हुआ है आत्मपद की प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्ष का फल है। इससे और उपाय त्यागकर आत्मपद की प्राप्ति का प्रयत्न करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे युक्तायुक्तविचारो नाम सप्ततितमस्सर्गः ॥ ७० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ जगज्जाल है वह सब आत्मा ब्रह्म का आभासरूप है, अज्ञान से स्थिरता को प्राप्त हुआ है और विवेक से शान्त हो जाता है। ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी आवर्त जो फुरते हैं उनकी संख्या कोई नहीं कर सकता। आत्मरूपी सूर्य के जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं। हे रामजी ! असम्यक्‌दर्शन ही जगत् की स्थिति का कारण है और सम्यक्‌दर्शन से शान्त हो जाता है—जैसे मरुस्थल में असम्यक् दर्शन से जल भासता है और सम्यक्‌दृष्टि से अभाव हो जाता है। हे रामजी ! संसाररूपी अपार समुद्र से युक्ति और आत्मअभ्यास बिना तरना कठिन है। मोहरूपी जल से वह पूर्ण है, मरणरूपी उसमें आवर्त है, पापरूपी झाग है; बड़वाग्नि इसके अङ्गों में नरक समान है तृष्णारूपी भँवर है, इन्द्रियाँ और मनरूपी तेंदुये और मच्छ हैं, क्रोधरूपी सर्प हैं, जीवरूपी नदियाँ हैं उसमें प्रवेश करती हैं, और जन्ममरणरूपी आवर्त-

चक्र हैं उनसे जो तर जाता है वही पुरुष है। स्त्रियाँ जो सुन्दर लगती हैं उनके महाबलवान् नेत्र हैं जिनसे पहाड़ों को भी खींच सकती हैं और मोतियों की नाईं दाँत इत्यादिक जो सुन्दर अङ्ग हैं वे महादुःख के देने वाले बड़वाग्नि की नाईं हैं। जो इनसे तर जाता है वही पुरुष है। हे रामजी ! जो जहाज और मल्लाहों के होते भी इनको नहीं तरते उनको धिक्कार है। जहाज और मल्लाह कौन हैं सो सुनो। जिस मनुष्य के शरीर में विचारसहित बुद्धि है वही जहाज है और सन्तरूपी मल्लाह है। इनको पाकर जो संसारसमुद्र से नहीं तरते उनको धिक्कार है। ऐसे संसारसमुद्र को जो तर गया है उसी को पुरुष कहते हैं। हे रामजी ! जिस पुरुष ने आत्मविचार में बुद्धि लगाई है वह तर जाता है अन्यथा कोई नहीं तर सकता। जिसको आत्मअभ्यास दृढ़ हुआ है वह तर सकता है। हे रामजी ! प्रथम ज्ञानवान् पुरुषों के साथ विचार और बुद्धि से संसार-समुद्र को देखो। जब तुम इसको ज्यों का त्यों जानोगे तब विलास और क्रीड़ा करने योग्य होगे। हे रामजी ! तुम तो भगवान् हो प्रबोध संसारसमुद्र से तर जाओ। तुम तो समर्थ हो तुम्हारे पीछे और तुम्हारे स्वभाव को विचार के और भी संसारसमुद्र से तर जावेंगे। जो इस शुभ मार्ग को त्यागकर विषयमार्ग की ओर जाते हैं, वे संसारसमुद्र में डूबे हैं। हे रामजी ! ये जो विषयभोग हैं वे विषरूप हैं, जो इनको सेवेगा वह नष्ट होगा परन्तु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है उसको यह जैसे गारुड़ मन्त्र पढ़नेवाले को सर्प दुःख नहीं दे सकता तैसे ही दुःख दे नहीं सकते। जिसका हृदय शुद्ध हुआ है वह विभूतिमान है बल, वीर्य और तेज यह तीनों तत्त्व के साक्षात्कार से बढ़ते हैं जैसे वसन्त ऋतु के आये से रस, फूल, फल सब प्रकट हो आते हैं। हे रामजी ! जिसे ज्ञानलक्ष्मी प्राप्त भई है वह पूर्ण अमृततुल्य, शीतल, शुद्ध और सम प्रकाशरूप है। इस लक्ष्मी को पाकर विदितवेद में स्थित हो रहते हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारसागरयोगोपदेशो
नामैकसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७१ ॥

—:०:—

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! तत्त्ववेत्ता के लक्षण संक्षेप से फिर कहिये और जिनको तत्त्व का चमत्कार हुआ है उनकी वृत्ति उदारवाणी से कहिये। ऐसा कौन है जो आपके वचन सुनके तृप्त न हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्त के लक्षण मैंने तुमको बहुत प्रकार से आगे कहे हैं पर अब फिर भी सुनो। हे महाबाहो। संसार को ज्ञानवान् सुषुप्ति की नाईं जानता है और सब एषणा उसकी नष्ट हो जाती है। वह सब जगत् को आत्मरूप देखता है और कैवल्यभाव को प्राप्त होता है। संसार उसे सुषुप्तिरूप हो जाता है और आत्मानन्द से घूर्म रहता है वह देता है परन्तु अपने जाने में किसी को नहीं देता। और लोकदृष्टि से प्रत्यक्ष हाथोंहाथ ग्रहण करता है परन्तु अपनीदृष्टि से कुछ नहीं लेता ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है वह यन्त्र की पुतलीवत् चेष्टा करता है। जैसे यन्त्र की पुतली अभिमान से रहित चेष्टा करती है तैसे ज्ञानवान् अभिमान से रहित चेष्टा करता है। देखता, हँसता, लेता, देता है परन्तु हृदय से सदा शीतलबुद्धि रहता है। वह भविष्यत् का कुछ विचार नहीं करता भूत का चिन्तन नहीं करता और वर्त्तमान में स्थिति नहीं करता। सब कामों में वह अकर्त्ता है, संसार की ओर से सो रहा है और आत्मा की ओर जाग्रत् है। उसने हृदय से सबका त्याग किया है, बाहर सब कार्यों को करता है और हृदय में किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। बाहर जैसे प्रकृत आचार प्राप्त होता है उसे अभिमान से रहित करता है द्वेष किसी में नहीं करता और सुख दुःख में पवन की नाईं होता है। एवम् भ्रम को त्यागकर उदासीन की नाईं सब कार्य करता है न किसी की वाञ्छा है और न किसी में खेदवान् है। बाहर से सब कुछ करता दृष्टि आता है पर हृदय से सदा असंग है। हे रामजी! वह भोक्ता में भोक्ता है, अभोक्ता में अभोक्ता है, मूर्खों में मूर्खवत् स्थित है, बालकों में बालकवत्, वृद्धों में वृद्धवत्, धैर्यवानों में धैर्यवान्, सुख में सुखी, दुःख में धैर्यवान् है। वह सदा पुण्यकर्त्ता, बुद्धिमान्, प्रसन्न, मधुरवाणी संयुक्त और हृदय से तृप्त है उसकी दीनता निवृत्त हुई है, वह सर्वथा कोमलभाव चन्द्रमा की नाईं शीतल और पूर्ण है। शुभ कर्म करने में उसे कुछ अर्थ नहीं और अशुभ में कुछ

पाप नहीं, ग्रहण में ग्रहण नहीं और त्याग में त्याग नहीं, वह न बन्ध है, न मुक्त है और न उसे आकाश में कार्य है न पाताल में कार्य है, वह यथावस्तु और यथादृष्टि आत्मा को देखता है उसको द्वैतभाव कुछ नहीं फुरता और न उसको बन्ध मुक्त के निमित्त कुछ कर्त्तव्य है, क्योंकि सम्यक्ज्ञान से उसके सब संदेह जल गये हैं। जैसे पिंजरे से छूटा पक्षी आकाश में उड़ता है तैसे ही शङ्का से रहित उसका चित्त आत्मप्रकाश को प्राप्त हुआ है। हे रामजी ! जिसका मन संसारभ्रम से मुक्त हुआ है और जो समरस आत्मभाव में स्थित है उसको इष्ट अनिष्ट में कुछ रागद्वेष नहीं होता, वह आकाश की नाईं सबमें सम रहता है। जैसे पालने में बालक अभिमान से रहित अङ्ग हिलाता है तैसे ही ज्ञानी की चेष्टा अभिमान से रहित होती है और जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त हो जाता है तैसे ही आत्मानन्द में ज्ञानी घूर्म हो जाता है और द्वैत की सँभाल उसको कुछ नहीं रहती, हेयोपादेय बुद्धि से रहित होता है। हे रामजी ! वह सबको सर्व-प्रकार ग्रहण करता है और त्याग भी करता है परन्तु हृदय से ग्रहण त्याग कुछ नहीं करता। जैसे बालकों को ग्रहण त्याग की बुद्धि नहीं होती तैसे ही ज्ञानी को नहीं होती और न उसको सब कार्यों में रागद्वेष ही फुरता है वह जगत् के पदार्थों को न सत् जानकर ग्रहण करता है और न असत् जानकर त्याग करता है, सबमें एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्ट में सुखबुद्धि करता है और न अनिष्ट में द्वेषबुद्धि करता है। हे रामजी ! जो सूर्य शीतल हो जावें, चन्द्रमा उष्ण हो जावें और अग्नि अर्थों को धावे तो भी ज्ञानी को कुछ आश्चर्य नहीं भासता। वह जानता है कि सब चिदात्मा की शक्ति फुरती है वह न किसी पर दया करता है, और न निर्दयता करता है, न लज्जा करता है, न निर्लज्ज है, न दीन होता है, न उदार होता है, न सुखी होता है, न दुःखी होता है, और उसे न हर्ष है, न उद्वेग है, वह सब विकारों से रहित शुद्ध अपने आपमें स्थित है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही वह भी निर्मल भाव में स्थित है और जैसे आकाश में अंकुर नहीं उदय होता तैसे ही उसको रागद्वेष उदय नहीं होता। हे रामजी ! ऐसा पुरुष सुख दुःख को

कैसे ग्रहण करे ? उसको जगज्जाल ऐसे भासता है जैसे जल में तरङ्ग। ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वभाव में स्थित हो। हे रामजी ! जैसे जाग्रत् के एक निमेष में स्वप्नसृष्टि फुर आती है और एक ही क्षण में नष्ट हो जाती है, तैसे ही जाग्रत् में भी सृष्टि उपज आती है और लीन हो जाती है। जो कुछ इच्छा, अनिच्छा, दुःख, सुख, शोक, मोह आदिक विकार हैं वे सब मन में फुरते हैं, जहाँ मन होता है वहाँ विकार भी होते हैं। जैसे जहाँ समुद्र होता है वहाँ तरङ्ग भी होते हैं तैसे ही जहाँ मन होता है वहाँ विकार भी होते हैं और जहाँ चित्त का अभाव है वहाँ विकारों का भी अभाव है। जबतक चित्त फुरता है तबतक जगत्भ्रम होता है और जब विचार-रूपी सूर्य के तेज से मनरूपी बरफ का पुतला गल जाता है तब आनन्द होता है। तब सुख दुःख की दशा शान्त हो जाती है और जब सुख दुःख का अभाव हुआ तब ग्रहणत्याग भी मिट जाता है और इष्ट अनिष्ट वाञ्छित नष्ट हो जाते हैं। जब ये नष्ट हो जाते हैं तब शुभ अशुभ भी नहीं रहते और जब शुभ अशुभ न रहे तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट हो जाते हैं और भोगों की इच्छा भी नष्ट हो जाती है। जब भोगों की इच्छा नष्ट हो जाती है तब मन भी निराशपद में लीन हो जाता है। हे रामजी ! जब मूल से मन नष्ट हुआ तब मन में जो संकल्प हैं वे कहाँ रहे ? जैसे तिलों के जले से तेल नहीं रहता तैसे ही मन में संकल्प विकल्प नहीं रहते तब केवल शान्त आत्मा ही शेष रहता है। जैसे मन्दराचल के क्षोभ मिटे से क्षीरसमुद्र शान्तिमान होता है तैसे ही चित्त शान्त होता है। हे रामजी ! इससे भाव में अभाव की भावना दृढ़ करो और स्वरूप का अभ्यास करो। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही कल्पना को त्यागकर महात्मा पुरुष निर्मल हो जाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनन्नाम द्विसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे जल में द्रवता से चक्र (आवर्त) होते हैं सो असत् ही सत् होकर भासते हैं तैसे ही चित्त के फुरने से असत् जगत् सत् हो भासता है और जैसे नेत्रों के दुखने से आकाश में तरुवरे

मोर के पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते हैं सो असत् ही सत् भासते हैं तैसे ही चित्त के फुरने से जगत् भासता है। जैसे बादलों के चलने से चन्द्रमा चलता दृष्टि आता है तैसे ही चित्त के फुरने से जगत् भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! जिससे चित्त फुरता है और जिससे अफुर होता है वह प्रकार कहिये कि उसका मैं उपाय करूँ। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ में शीतलता, तिलों में तेल, फूलों में सुगन्ध और अग्नि में उष्णता होती है तैसे ही चित्त में फुरना होती है। चित्त और फुरना दोनों एक अभेद वस्तु हैं, दोनों में जब एक नष्ट हो तब दोनों नष्ट हो जाते हैं। जैसे शीतलता और श्वेतता के नष्ट हुए बरफ नष्ट हो जाती है तैसे ही एक के नाश हुए दोनों नष्ट होते हैं। इसलिये चित्त के नाश के दो क्रम हैं–योग और ज्ञान। चित्त की वृत्ति के रोकने को योग कहते हैं और सम्यक् विचारने का नाम ज्ञान है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वृत्ति का विरोध किस युक्ति से होता है और प्राण, अपान पवन क्योंकर रोके जाते हैं किस योग से अनन्त सुख और सम्पदा प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस देह में जो नाड़ी हैं उनमें प्राणवायु फिरता है–जैसे पृथ्वी पर नदियों का जल फिरता है। वह प्राणवायु एक ही है पर स्पन्द के वश से नाना प्रकार की विचित्र क्रिया को प्राप्त होता है उससे अपान आदिक संज्ञा पाता है। योगीश्वरों की कल्पना है कि जैसे पुष्प में सुगन्ध और बरफ में श्वेतता अभेद है और आधार आधेय एकरूप है तैसे ही प्राण और चित्त अभेदरूप है। जब भीतर प्राणवायु फुरती है तब चित्तकला फुरकर जो संकल्प के सम्मुख होती है उसी का नाम चित्त है। जैसे जल द्रवीभूत होता है और उसमें लहर और चक्र फुर आते हैं तैसे ही प्राणों से चित्त फुर आता है। चित्त के फुरने का कारण प्राणवायु ही है जब प्राणवायु का निरोध होता है तब निश्चय करके मन भी शान्त होता है और मन में लीन हुए संसार भी लीन हो जाता है–जैसे सूर्य का प्रकाश के अभाव हुए रात्रि में मनुष्यों का व्यवहार शान्त हो जाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो सूर्य और चन्द्र निरन्तर आगमन करते हैं तो देहरूपी गृह में प्राणवायु का

रोकना किस प्रकार होता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सन्तजनों के संग, सत्शास्त्रों के विचार और विषयों के वैराग्य से योगाभ्यास होता है। प्रथम जगत् में असत्बुद्धि करनी चाहिये और वाञ्छित जो अपना इष्टदेव है उसका ध्यान करना चाहिये। जब चिरकाल ध्यान होता है तब एक तत्त्व का अभ्यास होता है उससे प्राणों का स्पन्दन रोका जाता है। रेचक, पूरक और कुम्भक जो प्राणायाम हैं उनका जब अखेदचित्त होकर अभ्यास दृढ़ करे और एक ध्यानसंयुक्त हो उससे भी प्राणों का स्पन्द रोका जाता है। ऊकार का उच्चार करने से ऊर्ध्व उसकी जो सूक्ष्मध्वनि होती है तो प्रथम शब्द बड़ी ध्वनि से होता है और फिर सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है उसमें चित्त की वृत्ति लगावे तो सुषुप्तिरूप अवस्था में वृत्ति तद्रूप हो जाती है तभी प्राणस्पन्द रोका जाता है। रेचक प्राणायाम के अभ्यास से विस्तृत प्राण वायु से शून्यभाव आकाश में जाय लीन होता है तब भी प्राण स्पन्द रोका जाता है। कुम्भक के अभ्यास के बल से भी प्राणवायु रोका जाता है। तालुमूल के साथ यत्न से जिह्वा का तालुघण्टा से लगा खेचरीमुद्रा से वायु ऊर्ध्वरन्ध्र को जाती है और ऊर्ध्वरन्ध्र में गये से भी प्राणवायु का स्पन्द रोका जाता है। नासिका के अग्र में जो द्वादश अंगुल पर्यन्त अपान-रूपी चन्द्रमा का निर्मल स्थान आकाश में है उसको ज्यों का त्यों देखे तो भी प्राणस्पन्द रोका जाता है। तालु के द्वादश अंगुल ऊर्ध्वरन्ध्र का अभ्यास हो तो उसके अन्त में जब प्राणों को लगावे तब उस संवित् में प्राणों का फुरना नष्ट हो जाता है। जो भ्रुवमध्य त्रिपुटी में प्रकाश को त्यागकर जहाँ चेतनकला रहती है वहाँ वृत्ति लगावे तो उससे भी प्राण कला रोकी जाती है। जो सब वासनाओं को त्यागकर हृदय आकाश में चेतनसंवित् का ध्यान करे तो भी चिरकाल के अभ्यास से प्राणस्पन्द रोका जाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जगत् के भूतों का हृदय क्या कहाता है जिस महाआदर्श में सब पदार्थ प्रतिबिम्बित हो जाता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जगत् के भूतों के दो हृदय हैं—एक ग्रहण करने योग्य है और दूसरा त्यागने योग्य। नाभि से जो दश अंगुल ऊर्ध्व है वह त्यागने योग्य है परिच्छिन्नभाव से जो देह के एक स्थान में स्थित है

और उसमें जो संवित्मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभव से प्रकाशता है वह मनुष्य को ग्रहण करने योग्य है जो भीतर बाहर व्याप रहा है और वास्तव में भीतर बाहर से भी रहित है वही प्रधान हृदय है और सब पदार्थों का प्रतिबिम्ब धरनेवाला आदर्श है। सब सम्पदा का भण्डार और सब जीवों का संवित् हृदय वही है, एक अङ्ग का नाम हृदय नहीं। जैसे जल में एक पुरातन पत्थर पड़ा हो तो वह जल नहीं हो जाता तैसे ही संवित्मात्र के निकट संचित्मात्र तो नहीं होता? यह जड़रूप है और आत्मा चैतन्य आकाश है। इस प्रधान हृदय से बल करके संवित्मात्र की ओर चित्त लगावे तब प्राण स्पन्द भी रोका जावेगा। हे रामजी! यह प्राणों का रोकना मैंने तुमसे कहा है और भी शास्त्रों में अनेक प्रकार से कहा है पर जिस-जिस प्रकार गुरु के मुख से सुने उसी प्रकार अभ्यास करे तब प्राणों का निरोध होता है, गुरु के उपदेश से अन्यथा सिद्ध नहीं होता। जिसको अभ्यास करके निरोध सिद्ध हुआ है वह कल्याणमूर्ति है और कोई कल्याणमूर्ति नहीं होता। हे रामजी! अभ्यास करके प्राणायाम होता है और वैराग्य की दृढ़ता से वासना क्षय होती है अर्थात् वासना रोकी जाती है। जब दृढ़ अभ्यास करे तब चित्त अचित् हो जाता है। हे रामजी! भृकुटी के दश अंगुल पर्यन्त जो वायु जाता है उसका वारम्वार जब अभ्यास करते हैं तब वह क्षीण हो जाता है और खेचरीमुद्रा अर्थात् तालु से जिह्वा लगा करके जो अभ्यास करे तो भी प्राण रोके जाते हैं। इसके अभ्यास से चित्त की व्याकुलता जाती रहती है और परम उपशम को प्राप्त होता है। जो यह अभ्यास करता है वह पुरुष आत्मारामी होता है, उसके सब शोक दूर हो जाते हैं और हृदय में आनन्द को प्राप्त होता है। इससे तुम भी अभ्यास करो। जब प्राणस्पन्द मिट जाता है तब चित्त भी स्थित हो जाता है, उसके पीछे जो पद है सो ही निर्वाणरूप है। हे रामजी! जब प्राणस्पन्द मिट जाते हैं तब चित्त भी स्थित हो जाता है। और जब चित्त स्थित हुआ तब वासना नष्ट हो जाती है, जब वासना नष्ट हो जाती है तब मोक्ष की प्राप्ति होती है। जब तक चित्त वासना से लिपटा है तब तक जन्म मरण देखता है और जब मन वासना से रहित होता है तब मोक्ष होता है। हे रामजी! प्राणवायु को रोककर वासना से रहित हो

जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ विचरो तो तुमको बन्धन न होगा। जब प्राण फुरता है तब मन उदय होता है और जब मन उदय हुआ तब संसारभ्रम होता है जब मन क्षीण होता है तब संसारभ्रम नष्ट हो जाता है। हे रामजी! जब मन से संसार की वासना मिट जाती है तब अशब्द पद प्राप्त होता है। जिससे यह सर्व है, और जो यह सर्व है, जिससे न सर्व है और जो न सर्व है, जो न सर्व में है और जिसमें न यह सर्व है ऐसा जो निर्गुण-तत्त्व है सो सर्वकलना के त्यागे से प्राप्त होता है उसको उपमा किसकी दीजे। आत्मा अविनाशी, निर्विकल्प और निर्गुण है, यह जगत् नाश-रूपी संकल्प से रचित शुद्धरूप है, उसका किस पदार्थ से दृष्टान्त दीजे? अर्थात् दूसरा कुछ नहीं, जितने कुछ स्वाद हैं उनको स्वादकर्त्ता वही है और जितने प्रकाश हैं उनको प्रकाशकर्त्ता वही है, सर्वकलना का कलना रूप वही है और जितने पदार्थ हैं उन सबका अधिष्ठानरूप वही है। वह चित्त और आवरण के दूर हुए प्राप्त होता है और सब पदार्थों की सीमा वही है। ऐसा जो आत्मरूप शीतल चन्द्रमा है जब उसमें बुद्धिमान् स्थित होता है तब जीवन्मुक्त कहाता है और उसकी सब इच्छा और आश्चर्य नष्ट हो जाता है, अहं त्वं आदिक कल्पना मिट जाती है, सर्व व्यवहार विस्मरण हो जाता है। ऐसा जो मुक्त मन है सो पुरुषोत्तम होता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तज्ञानबन्धो नाम त्रिसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७३ ॥

रामजी ने पूछा, हे प्रभो! योग की युक्ति तो आपने कही जिससे चित्त उपशम होता है अब सम्यक्ज्ञान का लक्षण भी कृपा करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तो निश्चय है कि आत्मा आनन्दरूप, आदिअन्त से रहित, प्रकाशरूप, सर्व परमात्मातत्त्व है इसी निश्चय को बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं। यह जो घट पटादिक अनेक पदार्थशक्ति है वह सब परमानन्दरूप आत्मा है उससे भिन्न नहीं। यह सम्यक्ज्ञानी की दृष्टि है और सर्वात्मा नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप, सदा अपने आपमें स्थित है ऐसा निश्चय सम्यक्ज्ञान है और जो इससे भिन्न है सो असम्यक् ज्ञान है। हे रामजी! सम्यक्दर्शी को मोक्ष है और असम्यक्दर्शी को बन्ध है

क्योंकि उसको आत्मा जगत्रूप भासता है और सम्यक्दर्शी को केवल आत्मा भासती है । जैसे रस्सी में असम्यकदर्शी को सर्प भासता है और सम्यक्दर्शी को रस्सी ही भासती है । सर्वसंवेदन और संकल्प से रहित शुद्ध संवित् परमात्मा है उसको जो जानता है वही परमात्मा का जाननेवाला बुद्धीश्वर है । इससे भिन्न अविद्या है । हे रामजी ! आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है उसमें द्वैतकलना कोई नहीं । ऐसा जो यथार्थदर्शी है वही सम्यक्दर्शी है । सर्व आत्मा पूर्ण है उसमें भाव, अभाव, बन्ध, मोक्ष कोई नहीं और न एक है, न द्वैत है, ब्रह्मा ही अपने आपमें स्थित है जो सब चिदाकाश है तो बन्ध किसे कहिये और मोक्ष कौन हो ? ऐसा जिसको ज्ञान है उनको काष्ठ-पाषाण ब्रह्मा से ब्यूटी पर्यन्त सम भासता है अल्पमात्र भी भेद नहीं भासता तो वह कल्पना के सम्मुख कैसे हो ? हे रामजी ! वस्तु के आदि-अन्त अन्वय व्यतिरेक करके आत्मा सिद्ध होता है अर्थात् पदार्थ है तो भी आत्मसत्ता से सिद्ध होता है और जो पदार्थ का अभाव हो जाता है तो भी आत्मसत्ता शेष रहती है । तुम उसी के परायण हो रहो ! वही अनुभवसत्ता जगत्रूप होकर भासती है और जरा-मरण आदिक जो नाना प्रकार से विकार वस्तुरूप भासते हैं वह वस्तु अपने आपमें ही फुरती है । जैसे जल में द्रवता से नाना प्रकार के तरङ्गबुद्बुदे होते हैं सो वे जलरूप हैं । कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही चित्त के फुरने से जो नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं । आत्मतत्त्व ही अपने आपमें स्थित हैं, जब उसमें स्थित होता है तब फिर दीन नहीं होता जो पुरुष दृढ़ विचारवान् है वह भोगों से चलायमान नहीं होता—जैसे मन्द पवन से सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता—और जो अज्ञानी है और विचार से रहित मूढ़ है उसको भोग ग्रास कर लेते हैं—जैसे जल से रहित मछली को बगुला खा लेता है । जिसको सर्व आत्मा भासता है वह सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है—वही मुक्तरूप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सम्यक्ज्ञानवर्णनन्नाम
चतुस्सप्ततितमस्सर्गः ॥ ७४ ॥

—:०:—

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! विवेकी पुरुष को जो भोग निकट आ प्राप्त होते हैं तो भी उनकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि उसको उसमें अर्थबुद्धि नहीं—जैसे चित्र की लिखी हुई सुन्दर कमलिनी के निकट भँवरा आन प्राप्त होता है तो भी उसकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी ! सुख दुःख की प्राप्ति और निवृत्ति में इच्छा तब तक होती है जब तक देहाभिमान होता है, जब देहाभिमान निवृत्त हुआ तब कुछ इच्छा नहीं होती। हे रामजी ! ममता करके दुःख होता है, जब रूप को नेत्र देखता है तब उसको इष्ट मानकर प्रसन्न होता है और अनिष्ट मानकर द्वेष करता है जैसे बैल भारवाहक की चेष्टा करता है उसको लाभ और हानि कुछ नहीं और जिसको उसमें ममत्व होता है वह लाभ-हानि का हर्ष शोक करता है तैसे ही ममत्व से जीव इन्द्रियों के विषयों में हर्ष शोकवान् होता है। जैसे गर्दभ कीचड़ में डूबे और राजा शोक करे कि मेरे नगर का गर्दभ डूबा है, तैसे ही ममत्व करके इन्द्रियों के विषयों में जीव दुःख पाता है, नहीं तो गर्दभ कीचड़ में डूबे तो राजा का क्या नष्ट होता है। हे रामजी ! यह इन्द्रियाँ तो अपने विषयों को ग्रहण करती हैं और इनमें जीव तपायमान होता है सो ही आश्चर्य है। जिन विषयों की जीव चेष्टा और इच्छा करते हैं सो क्षण में नष्ट हो जाते हैं। हे रामजी ! जो मार्ग में किसी के साथ स्नेह हो जाता है तो ममत्व और प्यार से दुःख होता है। जो देह में ममत्व करेगा उसको दुःख क्यों न होगा ? चाहे कैसा ही बुद्धिमान् हो वा शूरमा हो तो भी संग से बन्धवान् होता ही है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों का अहंमम भाव ग्रहण करेगा तो उनके नाश होने से वह भी नष्ट होवेगा। जिन नेत्रों का विषय रूप है सो नेत्र साक्षी होकर रूप को ग्रहण करता है और जीव ऐसा मूर्ख है कि औरों के धर्म आपमें मान लेता है और उनमें तपायमान होता है। जैसे भ्रम दृष्टि से आकाश में मोर पुच्छवत् तरुवरे और दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसे ही मूर्खता से जीव इन्द्रियों के धर्म अपने में मान लेता है। जैसे इन्द्रियों का साक्षी होकर जीव विषयों को ग्रहण करता है तैसे ही चित्त भी अभिमान से रहित साक्षी होकर ग्रहण करे तो रागद्वेष से तपायमान न हो जैसे जल

में चक्र तरङ्ग फुरते दृष्टि आते हैं तैसे ही इन्द्रियों में और इन्द्रियाँ फुर आती हैं, आधार आधेय से इनका सम्बन्ध होता है और चित्त इनके साथ मिलकर व्याकुल होता है। रूप, इन्द्रिय और मन इनका परस्पर भिन्न भाव है जैसे मुख, दर्पण और प्रतिबिम्ब भिन्न-भिन्न असंग हैं तैसे ही यह भी भिन्न-भिन्न असंग हैं परन्तु अज्ञान से मिले हुए भासते हैं। जैसे लाख से सोने, रूपे और चीनी का संयोग होता है तैसे ही अज्ञान से रूप अवलोक और मनस्कार का संयोग होता है। जब ज्ञान अग्नि से अज्ञानरूपी लाख जल जावे तब परस्पर सब भिन्न-भिन्न हो जाते हैं और फिर किसी का दुःख सुख किसी को नहीं लगता। जैसे दो लकड़ी का संयोग लाख से होता है तैसे ही अज्ञान से विषय इन्द्रियों और मन का संयोग होता है और ज्ञानरूपी अग्नि से जब बिछुड़ जाते हैं तब फिर नहीं मिलते। जैसे माला के भिन्न-भिन्न दाने तागे में इकट्ठे होते हैं तैसे ही देह और इन्द्रियों में अज्ञान से मेल होते हैं और जब विचार करके तागा टूट पड़े तब भिन्न-भिन्न हो जावे फिर न मिले। हे रामजी! जिन पुरुषों को आत्मविचार हुआ है वे ऐसे विचारते हैं कि हमको दुःख देनेवाला चित्त था और चित्त के नष्ट हुए आनन्द हुआ है। जैसे मन्दिर में दुःख देनेवाला पिशाच रहता है तब दुःख होता है। नहीं तो मन्दिर दुःख नहीं देता। पिशाच ही दुःख देता है, तैसे ही शरीररूपी मन्दिर में दुःख देनेवाला चित्त ही है। हे चित्त! तूने मिथ्या मुझको दुःख दिया था। अब मैंने आपको जाना है। तू आदि भी तुच्छ है, अन्त भी तुच्छ है और वर्तमान में भी मिथ्या जीवों को दुःख देता है। जैसे मिथ्या परछाहीं बालक को बैताल होकर दुःख देती है—बड़ा आश्चर्य है। हे चित्त! तू तबतक दुःख देता है जबतक आत्मस्वरूप को नहीं जाना। जब आत्मस्वरूप का ज्ञान होता है तब तू कहीं दृष्टि नहीं होता। तू तो माया मात्र है। स्थिर हो अथवा जा, मैं अब तुझसे मोहित नहीं होता। तू तो मूर्ख जड़ और मृतक है और तेरा आकार अविचार से सिद्ध है। अब मैंने पूर्व का स्वरूप पाया है, तू तत्त्व नहीं भ्रान्तिमात्र है जो मूढ़ है वह तुझसे मोहित होता है, विचारवान् मोहित नहीं होता। जैसे दीपक से अन्धकार दृष्टि नहीं आता, तैसे ही ज्ञान से तू

दृष्टि नहीं आता। हे मूर्ख चित्त! तू बहुत काल इस देहरूपी गृह में रहा है और तू वैतालरूप है। जैसे अपवित्र और श्मशान आदिक स्थानों में वैताल रहता है तैसे ही सत्संग से रहित देहरूपी गृह श्मशान के समान सदा अपवित्र है वहाँ तेरे रहने का स्थान है। जहाँ सन्तों का निवास होता है वहाँ तुझ सरीखे ठौर नहीं पाते सो अब मेरे हृदयरूपी गृह में सत् विचार सन्तोषादिक सन्तजन आन स्थित हुए हैं तेरे बसने का ठौर नहीं। हे चित्त पिशाच! तू पूर्वरूपी तृष्णा पिशाचिनी और काम क्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकर चिरपर्यन्त विचरा है अब विवेकरूपी मंत्र से मैंने तुझको निकाला है तब कल्याण हुआ। हे चित्त! पिशाचरूप तू प्रमादरूपी मद्य पानकर मत्त हुआ था और चिरपर्यन्त नृत्य करता था। अब मैंने विवेकरूपी मंत्र से तुझको निकाला है तब देहरूपी कन्दरा शुद्ध हुई है और शुद्धभाव पुरुषों ने निवास किया है। हे चित्त! मैंने तुझको विवेकरूपी मंत्रद्वारा वश किया है। अब तेरा क्या पराक्रम है? तब तक दुःख देता था जबतक विचाररूपी मंत्र न पाया था। अब तेरा बल कुछ नहीं चलता। अब मैं महाकेवल भाव में स्थित हूँ। आगे भी मैं तुझको जगाता था, आपसे ही तू सब रूप है। जैसे कच्चे मन्त्रवाला सिंह को जगाता है और आप कष्ट पाता है तैसे ही मैं तुझको जगाकर कष्ट पाता था। अब मैंने आत्मविचार से परिपक्व मन्त्र से तुझे वश किया है तब शान्तिमान् हुआ हूँ। अब ममता और मान मेरे कुछ नहीं रहे। मोह अहंकार सब नष्ट हो गये हैं और इनका कलत्र भी नष्ट हो गया है मैं निर्मल और चैतन्य आत्मा हूँ। मेरा मुझको नमस्कार है। न मेरे में कोई आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है और न देह है, ऐसा मेरा निर्गुणरूप आत्मा है। मेरा मुझको नमस्कार है। न कोई आत्मा है, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है, किसी शब्द का वहाँ प्रवेश नहीं ऐसा निराशपद है। प्रकाशरूप, निर्मल आत्मा मैं अपने आपमें स्थित हूँ। ऐसा जो मैं आत्मा हूँ मेरा मुझको नमस्कार है। मैं विकारी नहीं हूँ, मैं तो नित्य हूँ, निराश हूँ, सर्वकार्यों में अनुस्यूत हूँ, अंशांशीभाव से रहित हूँ। ऐसा सर्वात्मा जो मैं हूँ सो मेरा तुझको

नमस्कार है। मैं सम सर्वगत, सूक्ष्म और अपने स्वभाव में स्थित हूँ और पृथ्वी, पर्वत, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं और मैं ही सर्व पदार्थ होकर भासता हूँ। ऐसा मैं सर्वात्मा हूँ। अब मैं सर्वभाव को प्राप्त हुआ हूँ और मननभाव मुझको दूर हुआ है। मेरे प्रकाश से विश्व भासता है, मैं अजर, अमर और अनन्त हूँ और गुणातीत अद्वैत हूँ। मनन जिससे दूर हुआ है ऐसा जो मैं सुन्दररूप हूँ जिससे विश्व प्रकट है और स्वरूप से अविनाशी हूँ उस अनन्त, अजर, अमर, गुणातीत ईश्वररूप को नमस्कार है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तउपशम-
नाम पञ्चसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचारकर तत्त्ववेत्ता आत्मा को सम्यक् जानते हैं। तुम भी आत्मविचार का आश्रय करके आत्मपद के आश्रय हो रहो। यह जगत् सब आत्मरूप है, ऐसे जानकर चित्त से जगत् की सत्यता को त्याग करो। जब ऐसे विचार करे तब चित्त कहाँ है? बड़ा आश्चर्य है कि जो चित्त स्वरूप दिखाई देता था सो अविदित मायामात्र अस्तरूप था। जैसे आकाश के फूल कहनेमात्र हैं तैसे ही चित्त कहनेमात्र है और अविचार से दिखाई देता है। विचारवान् को चित्त असत् भासता है, क्योंकि अविचार से सिद्ध है। जैसे नौका पर बैठे बालक को तट के वृक्ष चलते भासते हैं पर बुद्धिमान को चलने में सद्भाव नहीं होता तैसे ही मूर्ख को चित्त सत्ता भासती है और विचारवान् का चित्त नष्ट हो जाता है। जब मूर्खतारूप भ्रम शान्त होता है तब चित्त कहीं नहीं पाया जाता। जैसे बालक चक्र पर चढ़ा हुआ फिरता है तो पर्वत आदिक पदार्थ उसको भ्रमते भासते हैं और जब चक्र ठहर जाता है तब पर्वत आदि पदार्थ अचल भासते हैं तैसे ही चित्त के ठहरने से द्वैत कुछ नहीं भासता। आगे मुझको द्वैत भासता था इससे चित्त के फुरने से नाना प्रकार की तृष्णा (इच्छा) उठती थी अब चित्त के नष्ट हुए इन पदार्थों की भावना नष्ट हुई हैं और सब संशय और शोक नष्ट हो गये हैं। अब मैं विगतज्वर स्थित हूँ, जैसे मैं स्थित हूँ तैसे हूँ, एषणा कोई नहीं। जब चित्त का चैत्यभाव नष्ट हुआ तब इच्छा आदिक गुण कहाँ रहे? जैसे

प्रकाश के नष्ट हुए वर्णज्ञान नहीं रहता तैसे ही चित्त के नाश हुए इच्छा आदिक नहीं रहते। अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट हो गई और मोह का पिंजड़ा टूट पड़ा अब मैं निरहंकार बोधवान् हूँ, सब जगत् शान्तरूप आत्मा है और नानात्व कुछ नहीं। मैं निराभास, आदि-अन्त से रहित आनन्दपद को प्राप्त हुआ हूँ। मेरा सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपना आप है और उसमें मैं स्थित हूँ। इन विचारों से अब क्या प्रयोजन है? जब तक आपको मैं देह जानता था तब तक ये विचार मूर्ख अवस्था में थे अब मैं अमित, निराकार और केवल परमानन्द सच्चिदानन्द को प्राप्त हुआ हूँ। आगे मैं चित्तरूपी वैताल को आप ही जगाता था और आप ही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मन्त्र से मैंने इसको नष्ट किया है और निर्णय से अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ। मैं शान्तात्मा अपने आपमें स्थित हूँ। हे रामजी! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है वह निर्द्वन्द्व रागद्वेष से रहित होकर स्थित होता है और प्रकृत कर्म करता है पर मानमद से रहित आनन्द करके पूर्ण होता है जैसे शरत्काल की रात्रि को पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से पूर्ण होता है तैसे ही प्रकृत आचार कार्यकर्त्ता ज्ञानवान् का हृदय शान्तपूर्ण आत्मा है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तशान्तिप्रतिपादन-
नाम षट्सप्ततितमस्सर्गः ॥ ७६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विचार वेदविदों ने कहा है पूर्व मुझसे ब्रह्माजी ने यही विचार विन्ध्याचल पर्वत पर कहा था। इसी विचार से मैं परमपद में स्थित हुआ हूँ। इसी दृष्टि का आश्रय करके आत्मविचार होकर तमरूपी संसारसमुद्र से तर जाओ। हे रामजी! इस पर एक और परम दृष्टि सुनो वह दृष्टि परमपद के प्राप्त करनेवाली है। जिस प्रकार वीतव मुनीश्वर विचार करके निःशङ्क स्थित हुआ है सो सुनो। महातेजवान् वीतव मुनीश्वर ने संसार के आधिव्याधि रोग से वैराग्य किया और नंगा होके पर्वतों की कन्दराओं में विचरने लगा। जैसे सूर्य सुमेरु पर्वत के चौफेर फिरता है तैसे ही वह विचरने लगा और संसार की क्रिया को दुखरूप विचारता था कि बड़े भ्रम देनेवाली है। ऐसे जानकर वह द्वेग

वान् हुआ और निर्विकल्प समाधि की इच्छा कर अपने व्यवहार को त्याग दिया और अपनी गौरकुटी त्यागकर और केले के पत्रों की बनाकर बैठा। जैसे भँवरा कमल को त्यागकर नीलकमल पर जा बैठता है तैसे ही गौर-कुटी को त्यागकर वह श्यामकुटी में जा बैठा। नीचे उसने कुश बिछाया उस पर मृगछाला बिछाया और उस पर पद्मासन कर बैठा और जैसे मेघ जल त्यागकर शुद्धमौन स्थित होता है तैसे ही और क्रिया को त्याग-कर शान्ति के निमित्त मौन स्थित हुआ। हाथों को तले कर मुख ऊपर कर और ग्रीवा को सूधा करके स्थित हुआ और इन्द्रियों की वृत्ति को रोक फिर मन की वृत्ति को भी रोका। जैसे सुमेरु की कन्दरा में सूर्य का प्रकाश बाहर से मिट जाता है तैसे ही इन्द्रियों की रोकी वृत्ति बाहर से भी मिट जाती है और हृदय से भी विषयों की चिन्तना का उसने त्याग किया। इस प्रकार वह क्रम करके स्थित हुआ। जब मन निकल जावे तब वह कहे कि बड़ा आश्चर्य है मन महाचञ्चल है कि जो मैं स्थित करता हूँ तो फिर निकल जाता है। जैसे सूखा पत्ता तरङ्ग में पड़ा नहीं ठहरता तैसे ही मन एक क्षण भी नहीं ठहरता सर्वदा इन्द्रियों के विषयों की ओर धावता है। जैसे गेंद को ज्यों-ज्यों ताड़ना करते हैं त्यों-त्यों उछलता तैसे ही इस मूर्ख मन को जिस-जिस ओर से खैंचता हूँ उसी ओर फिर धावता है और उन्मत्त हाथी की नाईं झूमता है, जो गन्ध की ओर से खैंचता हूँ तो रस की ओर निकल जाता है और जो रस की ओर से खैंचता हूँ तो गन्ध की ओर धावता है स्थित कदाचित्त नहीं होता। जैसे वानर कभी किसी डाल पर कभी किसी डाल पर जा बैठता है इसी प्रकार मूर्ख मन भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की ओर धावता है स्थिर नहीं होता। इसके ग्रहण करने के पञ्चस्थान हैं जिन मार्गों से विषयों को ग्रहण करता है सो पञ्चज्ञान इन्द्रियाँ हैं। अरे मूर्ख, मन! तू किस निमित्त विषयों की ओर धावता है यह तो आप जड़ और असत्‌रूप भ्रान्तिमात्र है तू इनसे शान्ति को कैसे पावेगा? इनमें चपलता से इच्छा करना अनर्थ का कारण है। ज्यों-ज्यों इनके अर्थों को ग्रहण करेगा त्यों-त्यों दुःख के समुद्र को प्राप्त होगा। ये विषय जड़ और असत्‌रूप हैं और तू भी जड़ है जैसे

मृगतृष्णा की नदी असत् होती है तैसे ही ये भी असत्रूप है। हे मन! ये तो सब असाररूप हैं तू भी इन्द्रियों सहित जड़रूप है, तू कर्तृत्व का अभिमान क्यों करता है? सबका कर्ता चिदानन्द आत्मभगवान् सदा साक्षी है तैसे ही आत्मा भी साक्षी है तू क्यों वृथा तपायमान होता है? जैसे सूर्य सबकी क्रियाओं को कराता साक्षी है तैसे ही आत्मा साक्षी है और सब जगत् भ्रान्तिमात्र है। जैसे अज्ञान से रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है। जैसे आकाश और पाताल का सम्बन्ध कुछ नहीं होता, ब्राह्मण और चाण्डाल का संयोग नहीं होता और सूर्य और तम का सम्बन्ध नहीं होता, तैसे आत्मा चित्त और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सत्तामात्र है और ये जड़ और असत्रूप हैं इनका सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा सबसे न्यारा साक्षी है। जैसे सूर्य सब जनों से न्यारा रहता है तैसे ही आत्मा सबसे न्यारा साक्षी है। हे चित्त! तू तो मूर्ख है विषयरूपी चबेने में राग करके सब ओर से भक्षण करता भी कदाचित् तृप्त नहीं होता और तू विचार के मिथ्या कूकर की नाईं चेष्टा करता है। तेरे साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं। हे मूर्ख! तू तो मिथ्या अहं अहं करता है और तेरी वासना अत्यन्त असत्रूप है और जिन पदार्थों की तू वासना करता है वे भी असत्रूप हैं। तेरा और आत्मा का सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा चैतन्यरूप है और तू मिथ्या जड़रूप है। यह मैंने जाना है कि जन्ममरण आदिक विकार और जीवत्व भाव को तूने मुझको प्राप्त किया है। मैं तो केवल चैतन्य परब्रह्म हूँ मिथ्या अहंकार करके जीवत्वभाव को प्राप्त हुआ हूँ और देहमात्र आपको जानता हूँ। मैं तो संवित्मात्र नित्यशुद्ध आदि अन्त से रहित परमानन्द चिदाकाश अनन्त आत्मा हूँ। अब मैं स्वरूप में जागा हूँ और सद्भाव मुझको कुछ नहीं दृष्टि आता। हे मूर्ख मन! जिन भोगों को तू सुखरूप जानकर धावता है वे अविचार से प्रथम तो अमृत की नाईं भासते हैं और पीछे विष की नाईं हो जाते हैं और वियोग से जलाते हैं। आपको तू कर्त्ता भोक्ता भी मिथ्या मानता है, तू कर्त्ता भोक्ता नहीं और इन्द्रियाँ कर्त्ता भोक्ता नहीं, क्योंकि जड़ हैं। जो तुम जड़ हुए तो तुम्हारे साथ मित्र

भाव कैसे हो और जो तू जड़ और असत्‌रूप है तो कर्त्ता भोक्ता कैसे हो और जो चेतन और सत्‌रूप है तो भी तेरे में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं हो सकता, क्योंकि तू मिथ्या है और मैं प्रत्यक्ष चैतन्य हूँ। तू कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपने में स्थापन करता है, तू मिथ्या है। जब मैं तुझको सिद्ध करता हूँ तब तू होता है तू निश्चय करके जड़ है, तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे हो ? जैसे पत्थर की शिला नृत्य नहीं कर सकती तैसे ही तुझको कर्तृत्व की सामर्थ्य नहीं। तेरे में जो कर्तृत्व है सो मेरी शक्ति है—जैसे हसुआ घास, तृण आदिक को काटता है सो केवल आपसे नहीं काटता पुरुष की शक्ति से काटता है और खड्ग में जो हनन क्रिया होती है वह भी पुरुष की शक्ति है, तैसे ही तुम्हारे में कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति से है। जैसे पात्र से जलपान करते हैं तो पात्र नहीं करता, पान पुरुष ही करता है और पात्र करके पान करता है तैसे ही तुम्हारे में कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति करती है और मेरी सत्ता पाकर तुम अपनी चेष्टा में विचरते हो। जैसे सूर्य का प्रकाश पाकर लोग अपनी अपनी चेष्टा करते हैं तैसे ही मेरी शक्ति पाकर तुम्हारी चेष्टा होती है। अज्ञान करके तुम जड़ से रहते हो और ज्ञान करके लीन हो जाते हो। जैसे सूर्य के तेज से बरफ का पुतला गल जाता है। इससे हे चित्त ! अब मैंने निश्चय किया है, तू मृतकरूप और मूढ़ है। परमार्थ से न तू है और न इन्द्रियाँ हैं। जैसे इन्द्रजाल की बाजी के पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्या हैं। मैं केवल विज्ञानस्वरूप अपने आप में स्थित निरामय, अजर, अमर, नित्य, शुद्ध, बोध, परमानन्द रूप हूँ और मैं ही नानारूप होकर भासता हूँ, परन्तु कदाचित् द्वैतभाव को नहीं प्राप्त होता सदा अपने आपमें स्थित हूँ। जैसे जल में तरङ्ग बुद्बुदे दृष्टि आते हैं सो जलरूप हैं तैसे ही सब पदार्थ मेरे भासते हैं सो मुझसे भिन्न नहीं। हे चित्त ! तू भी चिन्मात्रभाव को प्राप्त हो, जब तू चिन्मात्रभाव को प्राप्त होगा तब तेरा भिन्नभाव कुछ न रहेगा और शोक से रहित होगा। आत्मतत्त्व सर्व भाव में स्थित और सर्वरूप है, जब तू उसको प्राप्त होगा तब सब कुछ तुझको प्राप्त होगा। न कोई देह है और न जगत् है सब ब्रह्म ही है, ब्रह्म

ही ऐसे भासता है, वास्तव में अहं त्वं कल्पना कोई नहीं। हे चित्त! आत्मा चैतन्यरूप और सर्वगत है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तो भी तुझको संताप नहीं और अनात्मा, जड़ और असतरूप है तो भी तू न रह। जो कुछ परिच्छिन्न सा तू बनता है सो मिथ्या भ्रम है, आत्म-तत्त्व सर्वव्यापकरूप है द्वैत कुछ नहीं और सर्व वही है तो भिन्न अहं त्वं की कल्पना कैसे हो? असत् से कार्य की सिद्धता कुछ नहीं होता। जैसे शशे के सींग असत् हैं और उनके मारने का कार्य सिद्ध नहीं होता तैसे ही तुमसे कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य कैसे हो और जो तू कहे कि मैं सत्-असत् और चेतन-जड़ के मध्यभाव में हूँ–जैसे तम और प्रकाश का मध्य-भाव छाया है–तो सूर्यरूप परमात्मा निरञ्जन के विद्यमान रहते मन्दभावी छाया कैसे रहे जिससे कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता, क्योंकि तू जड़ है। जैसे हसुआ अपने आप कुछ नहीं काट सकता जब मनुष्य के हाथ की शक्ति होती है तब कार्य होता है, तैसे ही तुमसे कुछ कार्य नहीं होता जब आत्मसत्ता तुमसे मिलती है तब तुमसे कार्य होता है। तुम क्यों अहंकार करके वृथा तपायमान होते हो? हे चित्त! जो तू कहे कि ईश्वर का उपकार है तो ईश्वर जो परमात्मा है उसको करने न करने में कुछ प्रयोजन नहीं। सबका कर्त्ता भी वही है और अकर्त्ता भी वही है। जैसे आकाश पोल से सबको वृद्धता देनेवाला है परन्तु स्पर्श किसी से नहीं करता तैसे ही परमात्मा सब सत्ता देनेवाला है और अलेप है। हे मूर्ख मन! क्यों भोगों की वाञ्छा करता है? तू तो जड़ और असत्-रूप है और देह भी जड़ असतरूप है, भोग कैसे भोगोगे और जो पर-मात्मा के निमित्त इच्छा करते हो तो परमात्मा तो सदा तृप्त है और इच्छा से रहित है। सर्व में वही पूर्ण है और दूसरे से रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित है–तुझको किसकी चिन्ता है? इससे वृथा कल्पना को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो–जहाँ सर्व क्लेश शान्त हो जाते हैं। जो तू कहे कि परमात्मा के साथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्व सम्बन्ध है तो भी नहीं बनता–जैसे फूल और पत्थर का सम्बन्ध नहीं होता। तैसे ही परमात्मा के साथ तेरा सम्बन्ध नहीं होता। समान अधि-

करण और द्रव्य का सम्बन्ध होता है–जैसे जल औरमृत्तिका का सम्बन्ध होता है, जैसे औषध में चन्द्रमा की सत्ता प्राप्त होती है, जैसे सूर्य की तपन से शिला तप जाती है, जैसे बीज अंकुर का सम्बन्ध होता है, पिता और पुत्र का सम्बन्ध होता है और द्रव्य और गुण का सम्बन्ध होता है। आकार सहित वस्तु का सम्बन्ध निराकार निर्गुण वस्तु से कैसे हो? परमात्मा चैतन्य है, तू जड़ है, वह प्रकाशरूप है, तू तमरूप है, वह सत्-रूप है, तू असत्रूप है, इस कारण सम्बन्ध तो किसी के साथ नहीं बनता है तो तू क्यों वृथा जलता है? तू मननरूप है परमात्मा सर्वकलना से रहित है। तेज की एकता तेज से होती है और जल की एकता जल से होती है। तू कलङ्करूप है; परमात्मा निष्कलङ्क है तेरी एकता उससे कैसे हो? जिसका कुछ अङ्ग होता है उसका सम्बन्ध भी होता है सो सम्बन्ध तीन प्रकार का है–सम, अर्धसम और विलक्षण। जैसे जल से जल की एकता और तेज से तेज की एकता होती है यह सम सम्बन्ध है पर तेरा आत्मा के साथ सम सम्बन्ध नहीं। दूसरा अर्थ सम्बन्ध यह है कि जैसे स्त्री और पुरुष के अङ्ग समान होते हैं परन्तु कुछ विलक्षणरूप हैं सो अर्थ सम सम्बन्ध भी तेरा और आत्मा का नहीं। कुछ अन्य की नाईं भी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे जल और दूध का सम्बन्ध होता है तैसे भी तेरा सम्बन्ध नहीं–और अत्यन्त जो विलक्षण हैं उनकी नाईं भी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे काष्ठ और लाख, पुरुष और हाथी, घोड़ा आदिक का सम्बन्ध नहीं। आधार-आधेयवत् भी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे बीज और अंकुर, पिता और पुत्र आदिक का जो सम्बन्ध है तैसे भी तेरा और आत्मा का सम्बन्ध नहीं, क्योंकि सम्बन्ध उसका होता है जिसके साथ कुछ भी अङ्ग मिलता है, जिसका कोई अङ्ग नहीं मिलता और परस्पर विरोध हो उसका सम्बन्ध कैसे कहिये? जैसे कहिये कि शश के सींग पर अमृत का चन्द्रमा बैठा है वा तम और प्रकाश इकट्ठे हैं तो जैसे यह नहीं बनता, तैसे ही आत्मा के साथ देह, मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं बनता क्योंकि आत्मा सर्वकलना से अतीत, नित्य शुद्ध, अद्वैत और प्रकाश-रूप है और मनादिक जड़ असत्, मिथ्या और तमरूप है इनका सम्बन्ध

नहीं। जिनका परस्पर विरोध है उनका सम्बन्ध कैसे हो? तुम तो परमात्मा के अज्ञान से मन इन्द्रियाँ और देहादिक सहित उदय हुए हो और आत्मा के ज्ञान से अभाव हो जाते हो फिर सम्बन्ध कैसे हो? हे मन! जो कुछ जगत् है वह सब ब्रह्मस्वरूप है–द्वैत नहीं और अहं त्वं की कल्पना भी कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, सब कलना तेरे में थी और तू तबतक था जबतक स्वरूप का अज्ञान था। जब स्वरूप का ज्ञान होता है और अज्ञान नष्ट होता है तब तू कहाँ है। जैसे रात्रि के अभाव से निशाचरों का अभाव हो जाता है तैसे ही अज्ञान के नाश हुए तेरा अभाव हो जाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तानुशासन-
नाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनीश्वर विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा से तीक्ष्णबुद्धि से विचारने लगे और भी जो कुछ उससे कहा है सो सुनो। अनात्मा जो देह इन्द्रियाँ मनादिक हैं वे संकल्प से उपजे हैं, जब ज्ञान उदय होता है तब इनका अभाव हो जाता है। हे मन! जैसे सूर्य के उदय हुए तम नष्ट हो जाता है तैसे ही नित्य उदित-रूप अनुभवस्वरूप परमात्मज्ञान के उदय हुए तुम्हारा अभाव हो जाता है। वासना से उसका आवरण होता है और जब वासना का अभाव हो जाता है तब आवरण का भी अभाव हो जाता है। जैसे मेघ के नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है तैसे ही वासना के अभाव हुए आत्मतत्त्व प्रकाशता है। वासना का मूल अज्ञान है, जब अज्ञान सहित वासना नष्ट होती है तब चिदानन्द ब्रह्म प्रकाशता है। वासना ही का नाम बन्ध है और वासना की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। जब वासनारूपी रस्सी काटोगे तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा। जैसे प्रकाश बिना अन्धकार का नाश नहीं होता तैसे ही मन, इन्द्रियाँ, देहादिक आत्मविचार बिना नाश नहीं होती। जब विचार करके आत्मपद प्राप्त हो तब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव हो जाता है अर्थात् इनका अभिमान नष्ट होता है और इनके धर्म अपने में नहीं भासते। जब तक देह इन्द्रियों के साथ आवरण है तब

लग आत्मपद नहीं प्राप्त हो सकता, इससे कल्याण के निमित्त आत्मपद पाने का अभ्यास करो। जबतक जीव मन और इन्द्रियों के गुणों के साथ आपको मिला जानता है तबतक अपने स्वरूप की विभुता और सिद्धता नहीं भासती, जब आत्मा का साक्षात्कार हो जावेगा तब रागद्वेषादिक विकार नष्ट होंगे। जैसे सूर्य के उदय हुए निशाचरों का अभाव हो जाता है तैसे ही आत्मा के साक्षात्कार हुए विकारों का अभाव होता है। जिसके देखे से इनका अभाव हो जाता है उसका आत्मा के साथ सम्बन्ध कैसे हो। जैसे प्रकाश और तम का सम्बन्ध नहीं होता तैसे ही सत् असत् का सम्बन्ध नहीं होता और जैसे जीव से मृतक का सम्बन्ध नहीं होता तैसे ही आत्मा अनात्मा का सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सर्वकल्पना से रहित है और मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं। कहाँ यह मूक, जड़ और अनात्मारूप और कहाँ नित्य, चेतन, प्रकाश, निराकार, आत्मारूप, इनका परस्पर विरोध रूप है तो सम्बन्ध कैसे कहिये—ये तो निश्चय करके अनर्थ के कारण हैं। जब तक इनका अभिमान है तबतक जगत् दुःखरूप है और जब इनका वियोग हो तब जगत् परमात्मरूप होता है। जबतक आत्मा का अज्ञान है तबतक मनुष्य आपको इनमें मिला देखता है और दुःख पाता है और जब आत्मा का ज्ञान होता है तब अपने साथ इनका संयोग नहीं देखता यह मैंने निश्चय करके जाना है कि इन्द्रियाँ और मन के संयोग से जगत् भासता है और जब इन्द्रियों का ग्राम नष्ट हो जाता है तब जगत् परमात्मरूप हो जाता है। मैं जो आत्मा, मन और इन्द्रियों को इकट्ठा जानता था सो प्रमादरूपी मद्य के पान से मत्त हुआ मन से जानता था। अब आत्मविचार से मन नष्ट हुआ तब सुखी हुआ हूँ। जो विष को पान करके मूर्च्छित हो सो तो बनता है परन्तु पान किये बिना मूर्च्छित हो सो आश्चर्य है। इससे यदि अनात्मा का इसके साथ संयोग होता हो तो सुख दुःख करके राग द्वेषवान् होना भी बनता पर आत्मा तो सुख दुःख का साक्षीभूत है। सुख का संयोग ही जिससे नहीं और रागद्वेष से जलता है तो महामूर्खता है। आत्मा तो सुख दुःख का साक्षीभूत है जैसे उसके आगे अभ्यास होता है तैसा ही भासता है, कदाचित् विपर्ययभाव को

नहीं प्राप्त होता सुख दुःख में मूर्ख मन राग द्वेषवान् होता है। आत्मा तो सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है उसके साथ इन्द्रियों का संयोग कैसे हो? अब जो संयोग का अभाव सिद्ध हुआ तो आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिये? जहाँ चित्तकलना होती है वहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्व भी होता है और जहाँ चित्तकलना का अभाव है वहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्व का भी अभाव है। ऐसा निष्कलङ्क आत्मतत्त्व मैं हूँ कि न कर्त्ता हूँ, न भोक्ता हूँ, न मेरे बन्ध है, न मोक्ष है, न हन्ता हैं, न अहन्ता हैं, मैं सर्वात्मा अलेपरूप हूँ। हे मन! तू भी मैं हूँ और पृथ्वी, अप्, तेज वायु, आकाश पाँचों तत्त्व भी मैं ही हूँ। इस प्रकार निर्णय करके जिसने धारा है वह मोह को नहीं प्राप्त होता। जो अहं अभिमान करनेवाला आत्मा से आपको भिन्न जानता है वह दुःखी होता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब परमसुखी होता है। इससे जिसको कल्याण की इच्छा हो उसको एक आत्म (परमात्म) परायण होना योग्य है। जब स्वरूप को त्यागकर संकल्प की ओर धावता है तब दुःखों के समूह को प्राप्त होता है। हे चित्त! जो तू अपने में कर्तृत्व देखता था सो इन्द्रियों सहित जड़रूप पत्थर के समान है–जैसे आकाश में पवन नहीं लगता तैसे ही तुमसे कर्तृत्व नहीं होता। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब जीव चित्त आदिक से आपको मिला जानता है और चित्तादिक आत्मा की सत्ता पाकर चेतन होता है। जैसे अग्नि की सत्ता पाकर लोहा भी जला सकता है तैसे ही तुम आत्मा की सत्ता पाकर कर्तृत्व भोक्तृत्व में समर्थ होते हो। जब आत्मविचार करके स्वरूप का साक्षात्कार होता है, अज्ञानवृत्ति निवृत्त हो जाती है और मनादि का वियोग होता है तब सर्वकलना से रहित हुआ केवल मोक्षरूप आत्मा होता है और कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभाव हो जाता है। जैसे आकाश में लाली का अभाव है तैसे ही आत्मा में कर्तृत्व का अभाव है। सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है। जैसे समुद्र तरङ्ग आदिक नाना प्रकार से होता है सो सब जलरूप है–भिन्न नहीं, तैसे ही सर्वजगत् आत्मारूप है–आत्मा से भिन्न नहीं। सच्चिदानन्द आत्मा मैं अपने आपमें स्थित हूँ और द्वैतकलना मेरे में

कोई नहीं । जैसे समुद्र उष्णता से रहित है तैसे ही परमात्मा सर्वकलना से रहित है और जैसे आकाश में वन नहीं होता तैसे ही परमात्मा में कलना नहीं होती, वह संवेदन से रहित, संवित्मात्र सर्वात्मा है, जब उसका साक्षात्कार होता है तब अहं त्वं आदिक कलना का अभाव हो जाता है । वह अनादि, अरूप, सर्वगत, सदा अपने आपमें स्थित है, ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है उसको द्वैतकल्पना आरोपने को कौन समर्थ है । ऐसा कौन है जो आकाश में ऋग्वेद लिखे ? नित्य उदिति, सर्व का सार, अद्वैत आत्मा है उसमें द्वैत का अभाव है और सबमें पूर्ण, निर्मल, नित्य आनन्दरूप है ऐसे आत्मा को अब मैं प्राप्त हुआ हूँ जगत् का सुख-दुःख अब नष्ट हुआ है सम शान्तरूप हुआ हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने अनुशासनयोगोप-
देशो नामाष्टसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार वीतव मुनि श्रेष्ठ विचार करता था फिर जो कुछ वह निर्मल बुद्धि से विचारने लगा सो भी सुनो । हे इन्द्रिय-रूप मन ! तुम क्यों अपने अर्थों की ओर धावते हो ? तुमको तो विषयों से शान्ति नहीं होती—जैसे मृग मरुस्थल की नदी देखकर दौड़ता है और शान्तिमान नहीं होता । इससे तुम भी विषयों की ओर तृष्णा करने से शान्तिमान न होगे । इनकी इच्छा त्यागकर जो परमात्मतत्त्व अविनाशी सर्व अवस्था में एकरस और सत्य है उसको ग्रहण करो तब सब दुःख तुम्हारे मिट जावेंगे । तुम्हारे साथ मैं मिला था तब मैंने भी दुःख पाया । तुम अज्ञान से उत्पन्न हुए हो और जो तुम्हारे साथ मिलता है उसको भी दुःख प्राप्त होता है । जैसे तपी हुई लाख जिसके शरीर से स्पर्श करती है उसको जलाती है तैसे ही जिसको तुम्हारा संग हुआ है वह दुःख पाता है । हे मन ! यह जीव तुम्हारे संग से काल के मुख में जा पड़ता है । जैसे नदी जल सहित होती है तब समुद्र की ओर चली जाती है—जल से रहित हो तो क्यों जावे, तैसे ही तुम्हारे संग करके जीव काल के मुख में जा पड़ता है, तुम्हारा संग न हो तो क्यों पड़े ? जैसे मेघ कुहिरे मे सूर्य को घेर लेता है, तैसे ही मनरूपी मेघ इच्छारूपी कुहिरे मे

आत्मारूपी सूर्य को घेर लेता है और परम्परा दुःखों की वर्षा करनेवाला है। हे मन ! तेरे में चिन्ता उठती है इससे तू मर्कट की नाईं है। जैसे मर्कट वृक्ष को ठहरने नहीं देता, हिलाता है तैसे ही चित्त देह को ठहरने नहीं देता। चित्तरूपी पक्षेरू के लोभ और लज्जा दो पंख हैं और रागद्वेषरूपी चोंच है जिससे शरीररूपी वृक्ष पर बैठा शुभगुणों को काट-काटकर खाता है। चित्तरूपी महानीच कुत्ता भोगभावनारूपी महाअपवित्र पदार्थों को हृदयरूपी स्थान में इकट्ठा करता है और ऐसी चेष्टा से कदाचित् रहित नहीं होता। चित्तरूपी उल्लूक अज्ञानरूपी रात्रि में विचरता है, चेष्टा करके प्रसन्न होता है और शब्द करता है। जैसे श्मशान से बैताल शब्द करता है। जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट हो तब चित्तरूपी उल्लूक का भी अभाव हो और सम्पदा ज्ञान प्रवेश करे। जैसे सूर्य के उदय हुए सूर्यमुखी कमल उदय होता है तैसे ही सम्पदा प्रफुल्लित होता है। जब मोहरूपी कुहिरा और इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाश से निवृत्त होती है तब निर्मल आकाश प्रकट होता है। हे चित्त ! जब तक तू नष्ट नहीं होता तबतक शान्ति नहीं होती। स्वस्थ बैठे हुए जो चिन्ता प्राप्त होती है वह तेरे ही संयोग से होती है जहाँ चित्त नष्ट होता है तहाँ सर्व आनन्द होकर शीतलता और मित्रता से पावन होता है। जैसे शीतकाल का आकाश निर्मल होता है और मेघ के नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है तैसे ही अज्ञान के नष्ट हुए आत्मा में प्रकाशता और प्रसन्नता, गम्भीरता, महत्त्वता और समता होती है। जैसे वायु और मन्दराचल पर्वत से रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होता है और पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसे ही अज्ञान के नाश हुए आत्मानन्द पाकर यह मनुष्य शोभता है। हे चित्त ! यह स्थावर-जंगम जगत् संवित्रूप आकाश में है। उस महत् ब्रह्म को तुम भी प्राप्त हो। जो पुरुष आशारूपी फाँसी को तोड़कर आत्मपद में प्राप्त हुआ है और जिसने संसार का सद्भाव निवृत्त किया है वह जन्म-मरण के बन्धन में नहीं पड़ता है। जैसे जला हुआ पत्र फिर हरा नहीं होता तैसे ही चित्त नष्ट हुआ जन्म-मरण नहीं पावता। हे चित्त ! तू सबको भक्षण करनेवाला है। जो तू संसार को सत् मानकर उसकी

ओर धावेगा तो तेरा कल्याण न होगा और जो आत्मा की ओर आवेगा तो तेरा कल्याण होगा जब तू अपना अभाव कर आत्मपद में स्थित होगा तब कल्याणरूप होगा और जो तू अपना सद्भाव करेगा कि आकार को न त्यागेगा तो दुःखी होगा। जो तेरा जीना है वह मृत्यु समान है और जो मृत्यु है सो जीने के समान है। दोनों पक्षों में जो तेरी इच्छा हो सो अङ्गीकार कर। जो तू अबही आपको आत्मपद में निर्वाण करेगा तो परमपद को प्राप्त होकर परमसुखी होगा और जो न करेगा तो परम दुःखी होगा जो आत्मपद को त्याग करेगा वह मूढ़ है। तेरा निर्वाण होना आत्मपद में जीने का निमित्त है और आत्मा से भिन्न जो तू जीने की इच्छा करता है सो तेरा जीना मिथ्या अर्थात् तू आदि भी मिथ्या है और अब भी विचार बिना भ्रममात्र है, विचार किये से नष्ट हो जावेगा। जैसे सूर्य के प्रकाश बिना अंधकार होता है और प्रकाश से नष्ट हो जाता है तैसे ही विचार बिना चित्त है, विचार से नष्ट हो जाता है। इतने काल मैं अविवेक से ही जीता था। जैसे बालकों को अपनी परछाहीं में वैताल कल्पना होती है और विचार बिना भय पाती है–विचार किये से निर्भय होता है तैसे ही अब मैं तेरे संग से छूट अपने पूर्व स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ और विवेक से तेरा अभाव हुआ है। इससे विवेक को नमस्कार है। हे चित्त ! अविवेक से तू मेरा मित्र था अब बोध से तेरा चित्तभाव नष्ट हो गया। तू परमेश्वररूप है। अब वासना नष्ट हुई है। आगे तेरे में नाना प्रकार की वासना थी उससे तू मलिन और दुःखरूप था। अब वासना के नष्ट होने से तेरा परमेश्वररूप हुआ है। तेरे में अज्ञान से चित्तस्वभाव उपजा दुःखों का कारण था सो विवेक से लीन हुआ है। जैसे रात्रि के पदार्थ सूर्य के उदय हुए लीन हो जाते हैं तैसे ही विवेक से चित्तभाव नष्ट हुआ है सो सिद्धान्त का कारण है। तेरे संग से मैं तुच्छ सा हो गया था, अब शास्त्रों की युक्ति से निर्णय किया है कि न तू आगे था, न अब है और न फिर होगा। जबतक मैंने आपको न जाना था तबतक तेरा सद्भाव था, अब मैंने आपको जाना है और अपने आपमें स्थित हुआ हूँ। अब मैं परम निर्वाण और शान्त

रूप हूँ, सब ताप मेरे नष्ट हुए हैं और नित्यशुद्ध चिदानन्द परब्रह्मस्वरूप हूँ। जगत् की सत्य-असत्य कलना मेरी नष्ट हुई है, क्योंकि कलना सब चित्त में थी, जब चित्त निर्वाण हो गया तब कलना कहाँ रही? मैं केवल शुद्ध आत्मा हूँ मेरा प्रतियोगी कोई नहीं और न व्यवच्छेद है, क्योंकि दूसरा कोई नहीं केवल चित्त की चेतना फुरती थी सो निर्वाण हो गई है और अब मैं स्वस्थ हुआ हूँ। जैसे तरङ्गों से रहित समुद्र अचल होता है तैसे ही सर्वकलना से रहित मैं वीतराग हूँ और संवेदन से रहित समसत्तामात्र अपने आपमें स्थित हूँ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशोनाम-कोनाशीतितमस्सर्गः ॥ ७९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतव ने निर्वासनिक हो निर्णय करके विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में समाधि लगाई और आकाशवत् निर्मलचित्त हो इन्द्रियों की वृत्ति बाहर से खींचकर अचल की और फिर ग्रीवा को सम करके चित्त की वृत्ति अनन्तआत्मा साक्षीभूत में स्थित की। जैसे लकड़ियों को जलाकर अग्नि की ज्वालाशान्त हो जाती है तैसे ही उसके प्राण और मन की वृत्ति का स्पन्द मिट गया और जैसे शिला में खोदी हुई पुतली होती है और मूर्ति की लिखी हुई पुतली होती है तैसे ही स्थित हो गया। मेघों की वर्षा शिर पर हो, मण्डलेश्वर शिकार खेलें बड़े शब्द रीछ हों, और वानर शब्द करें, बारहसिंहों और हाथियों के शब्द हों, वन में अग्नि लगे, पत्थरों की वर्षा हो, वायु चले और धूप पड़े तो भी वह समाधि से न जागे और जैसे पहाड़ में शिला दबी होती है तैसे ही उसका शरीर दब गया। जब तीन सौ वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हुए तब चित्त फुर आया कि शरीर मेरे साथ है परन्तु प्राण नहीं फुरे और चित्त के फुरने में आपको कैलास पर्वत के ऊपर और कदम्ब के वृक्ष के नीचे देखा। सौ वर्ष पर्यन्त मौन होकर जीवन्मुक्त और निर्मल आत्मा हो विचरा। सौ वर्ष पर्यन्त विद्याधर होकर विद्याधरों में विचरा, उसके अनन्तर और पञ्चयुग बीतकर इन्द्र हुआ तब देवता उसे नमस्कार करते थे। रामजी ने पूछा हे भगवन्! देश काल और मनादिक प्रतिभा उसको अनियत अग्नि-

यम कैसे भासित हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चित्त सर्वात्मरूप है, जैसा जैसा उसमें फुरना होता है तैसा ही भासता है । जैसे जैसे देश काल का फुरना होता है जैसे ही अनुभव होता है । हे रामजी ! जितना प्रपञ्च है वह मनोमात्र है । जैसा फुरना तीव्र होता है वैसे ही अनुभवसत्ता में भासित हो वहाँ स्थित होता है । जब और भ्रम में गया तो नियम के अनुसार तैसे ही होता जाता है । जो अज्ञानी होता है उसको वासना से नाना प्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् होता है वह सब आत्मा को देखता है, उसका फुरना भी अफुरना है और वासना भी अवासना है । वीतव मुनीश्वर ने चित्त के फुरने से इतना देखा परन्तु स्वस्थरूप था इससे उसकी वासना भी अवासना थी । जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही उसकी वासना भी अवासना थी और भ्रान्ति का कारण न था । फिर कल्पपर्यन्त वह चन्द्रधार सदाशिवजी का गण हो समस्त विद्याओं का ज्ञाता और सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकर विचरा । हे रामजी ! जैसा किसी का संस्कार दृढ़ होता है तैसा ही उसको अनुभव होता है । जैसे वीतव चित्त को स्पन्द करके जीवन्मुक्ति का अनुभव करता था । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जो ऐसे हैं तो जीवन्मुक्ति के मत में बन्ध मोक्ष हुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जीवन्मुक्ति को सब ब्रह्मस्वरूप भासता है बन्ध व मोक्ष अवस्था उसमें कहाँ है ? ज्ञानमात्र आकाश में जैसा फुरना होता है तैसा ही भासता है । हे अङ्ग ! यह सब चिन्मात्रस्वरूप है और जगत् नाना प्रकार का मन से भासता है, वास्तव में न जगत् है न अजगत् है केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है । जगत् में भूत भविष्यत् केवल ब्रह्मसत्ता भासती है । चिन्मात्र से भिन्न जगत् मन के फुरने से भासता है जिनको ऐसा ज्ञान नहीं उनको जगत् वज्रसार से भी दृढ़ हो भासता है और ज्ञानवान् को आकाशवत् भासता है । हे रामजी ! अज्ञान से मन उपजा है उससे सम्पूर्ण जगत् हुआ है वास्तव में और कुछ नहीं । जैसे समुद्र में तरङ्ग और उल्लास होते हैं तैसे ही चिदाकाश में आकर भासते हैं । जब चित्त अचित्त हो जाता है तब कुछ द्वैत नहीं भासता ।

इति श्रीयोग० उपशम० वीतवमनोयज्ञवर्णनन्नामाशीतितमस्सर्गः ॥८०॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वीतव मुनीश्वर का जो शरीर विन्ध्याचल पर्वत में फँसा था फिर उसकी क्या अवस्था हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसके अनन्तर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर एक काल में शरीर गणों को मन से विचारने लगा कि कई नष्ट हो गये हैं। उन अनष्टों में पृथ्वी के मध्य जो उसका स्थित था उसको देखा कि कन्दरा की धूलि में वर्षा से फँस गया है और ऊपर तृणजाल जम गया है। उसको देखकर कहने लगा कि इसमें प्रवेश करूँ पर फिर विचार किया कि यह तो जड़ गूँगा और फँसा हुआ है और इसको मैं नहीं निकाल सकता, इससे सूर्य-मण्डल को जाऊँ कि सूर्य के सारथी अरुण पंगु इसको निकालेंगे, अथवा इसके साथ मेरा क्या प्रयोजन है? यह नाश हो जावे अथवा रहे इतना यत्न मैं किस निमित्त करूँ? मैं अपने निर्गुण स्वरूप में स्थित होऊँ देह से मेरा क्या है। इस प्रकार विचार वीतव तूष्णीम हो गया और एक क्षण के अनन्तर फिर चिन्तन करने लगा कि पृथ्वी में न कुछ त्यागने योग्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्य है, इससे देह को त्यागना और रखना समान है तो यह शरीर किस निमित्त दवा रहे। कुछ काल और इसका प्रारब्ध वेग है इसलिये जो आकाश में सूर्य स्थित है उसमें प्रवेश करूँ—जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब प्रवेश करता है और उस शरीर को सूर्य के सारथी से निकलवाऊँ। हे रामजी! ऐसे विचारकर मुनीश्वर पुर्यष्टकरूप से आकाशमार्ग में चढ़ा और प्रणाम करके सूर्य के भीतर वायुरूप हो प्रवेश किया—जैसे शस्त्र पिण्ड में अग्नि प्रवेश करती है। सूर्य भगवान् ने जाना कि वीतव मुनीश्वर ने प्रवेश किया है और सर्वज्ञ थे इससे जाना कि पृथ्वी में इसका शरीर कीचड़ और तृणों से दवा हुआ है उसके निकलवाने के निमित्त आया है। ऐसे विचार सूर्य ने अपने सारथी से कहा। हे सारथी! विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में वीतव मुनीश्वर का शरीर दवा पड़ा है उसको तू जाकर निकाल दे। तब अरुण नामक सारथी ने जिसका शरीर हाथी के समान है विन्ध्याचल पर्वत में आकर नखों से वह शरीर निकाला। उसके नख ऐसे थे जिनसे वह पहाड़ उखाड़ डाले उन नखों से धराकोटर में गड़े हुए उस

शरीर को उसने निकाला जैसे समुद्र के तीरे भीह की तन्तु को कीड़ा पाते हैं तैसे ही पर्वत की कन्दरा से उस शरीर को निकाल डाला । तब मुनीश्वर ने पुर्यष्टका से उस शरीर में प्रवेश किया—जैसे पक्षी आकाश मार्ग से उड़ता-उड़ता आलय में आ प्रवेश करे । सावधान होकर अरुण को नमस्कार किया और अरुण ने भी वीतव को नमस्कार किया और अपने-अपने कार्य की ओर हुए । अरुण तो आकाशमार्ग को गया और मुनीश्वर का शरीर कीचड़ से भरा हुआ था इससे उसने तालाव पर जाकर डुबकी मारी और जैसे हाथी मल धोता है तैसे ही स्नान करके सन्ध्यादिक कर्म किये और सूर्य भगवान् का पूजन किया । जैसे प्रथम तप से शरीर शोभता था तैसे ही भूषित किया और मैत्री, समता, सत्व, मुदिता आदिक गुणों से सम्पन्न होकर ब्रह्मलक्ष्मी से सुशोभित हुआ और सबके अङ्ग से रहित भी रहा कि इन गुणों को भी स्वरूप में स्पर्श न करे और आपको शुद्ध स्वरूप जाने ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवसमाधियोगोपदेशो नामैकाशीतितमस्सर्गः ॥ ८१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जब कुछ दिन व्यतीत हुए तब समाधि के निमित्त मुनीश्वर का मन उदय हुआ और विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में जा बैठा । पूर्व जो विचार अभ्यास किया था और परावर परमात्मादृष्टि हुई थी उससे फिर चित्त को कहा कि हे चित्त और इन्द्रियों ! मैंने तुम्हारा पूर्व प्रहार कर छोड़ा है । अब तुम्हारे अचित्त में अर्थ अनर्थ कोई नहीं, क्योंकि अस्ति नास्ति कलना मेरी नष्ट हुई है । अस्ति नास्ति के पीछे जो शेष रहता है उसमें स्थित हूँ । जैसे पहाड़ का शृंग अचल होता है तैसे ही अचल हूँ । सदा उदयरूप आत्मा की नाईं स्थित हूँ और सदा ज्ञानस्वरूप प्रकाशवान् हूँ । असत् की नाईं इस प्रकार कि सदा अक्रियरूप हूँ और असत्रूप उदय की नाईं स्थित हूँ । असत् इस प्रकार से मन इन्द्रियों का विषय नहीं और उदय की नाईं इस कारण से कि सबका साक्षीभूत हूँ और सदा समरस प्रकाशरूप अपने आप में स्थित हूँ । प्रबुद्ध और सुषुप्तिविषय स्थित हूँ । प्रबुद्ध इस कारण कि जो

इन्द्रियों के विषय की उपलब्धि करता हूँ और सुषुप्ति इस कारण कि हर्ष, शोक, इष्ट, अनिष्ट से रहित और जगत् की ओर से सुषुप्तिवत् समाधि में स्थित हूँ और स्वरूप में जाग्रत् हुआ तुरीया पद आत्मतत्त्व में स्थित हूँ। जैसे किसी स्थान में खंभ स्थित होता है तैसे ही स्थितरूप नित्य, शुद्ध, समानसत्ता जो आत्मपद है वहाँ मैं निरामय स्थित हूँ। हे रामजी! इस प्रकार ध्यान करता हुआ वह मुनीश्वर ध्यान में लगा और छः दिन तक ध्यान में रहा और फिर जब जगा तो उस काल को क्षण के समान जाना जैसे सोया हुआ क्षण में जागे। इसी प्रकार वीतव शुद्धपद को प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होकर चिरकाल पर्यन्त विचरता रहा। न कोई वस्तु उसे हर्ष दे और न शोक दे, चलता हुआ भी स्थित रहे और इन्द्रियों का व्यवहार करता भी इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में सम रहे—कदाचित् किसी से चलायमान न हो। वह चलता बैठता मन और इन्द्रियों से कहे, हे इन्द्रियों! मरो। हे मन! अब तू समवान् हुआ है और आत्मा को पाकर अब देख तुझको क्या सुख है। जिस सुख के पाये से और पाने योग्य कुछ नहीं रहता, वह निरोग सुख है। ऐसा जो परमशान्तरूप अचल सुख है तिसका आश्रय करके चञ्चलता को त्याग और हे इन्द्रियों! तुम्हारा वास्तव में कुछ स्वरूप नहीं और आत्मपद में तुम दृष्टि नहीं आती। अपने स्वरूप के जाने बिना तुम मुझको दुःख देती थीं, अब मैं अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ और अब तुम मुझे वश नहीं कर सकतीं, क्योंकि तुम अवस्तुरूप हो आत्मा के प्रमाद से तुम्हारा भान होता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही आत्मा में जो अनात्म भावना और अनात्मा में आत्मभावना होती है सो अविचार से होती है और विचार किये से नहीं होती। अब विचार करके यह भ्रम निवृत्त हुआ है, तुम इन्द्रियगण और हो, अहंकार और है ब्रह्म और कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है। और का दुःख आप में मानना यही मूर्खता है। जैसे वन की लकड़ी और है, बाँस और है चर्म और है जिससे रथ बनता है और लोहा, पीतल और कड़े जिनसे रथ जड़ा जाता है सो सब भिन्न-भिन्न हैं और बैल जो रथ को चलाता है सो भी जुदा है, इन सबसे रथ बनता है और जैसे गृह का

आकार होता तैसे रथ है उसमें बैठनेवाला पुरुष भी और होता है और रथ की सामग्री परस्पर भिन्न-भिन्न होती है तो यदि उसमें बैठनेवाला कहे कि मैं रथ हूँ तो नहीं बनता तैसे ही शरीररूपी रथ अज्ञान से मिला है। इन्द्रियाँ और हैं और मनादिक और हैं उसमें पुरुष है सो जीव है, यदि जीव कहे कि मैं शरीर हूँ तो बड़ी मूर्खता है। उस शरीर के सुख-दुःख मूर्खता से आपको मानता है जो विचार करके देखो तो रागद्वेष के क्षोभ से मुक्त हो। मैंने अविचार को दूर से त्यागा है और स्वरूप की स्मृति स्पष्ट की है कि आत्मतत्त्व सत् है। उसी को मैंने सत् जाना है और अनात्मा असत् है उसको असत् जाना है। जो सत् है वह स्थित है, जो असत् है वह क्षीण हो जाता है। हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनि विचार करके जीवन्मुक्त हुआ और अपने स्वरूप में बहुत वर्षों को व्यतीत किया। निर्भयपद में चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं। ऐसे शुद्धपद को प्राप्त हुआ वह यथाभूतार्थ आत्मध्यान में स्थित हुआ और ग्रहण और त्याग की कुछ भावना न रही परिपूर्ण आत्मपद को प्राप्त हुआ। अगस्त्य मुनि का पुत्र वीतव मुनि उस पद को पाकर निर्वासनिक हुआ। फिर जिस काल में और जिस प्रकार से वह विदेह-मुक्त हुआ है वह भी सुनो। बीस हजार और सात सौ वर्ष वह जीवन्मुक्त रहकर फिर विदेहमुक्त हुआ, जो इच्छा अनिच्छा से रहित पद है और जन्म-मरण का जिसमें अन्त है उस रागद्वेष से रहित पद को प्राप्त हुआ। हे रामजी! फिर उसने हिमालय पर्वत की कन्दरा में प्रवेश किया और पद्मासन बाँध हाथ जोड़कर कहा, हे राग! राग तुम निरागता और निर्द्वेषता को प्राप्त हो। तुम्हारे साथ मैंने चिरपर्यन्त विवेक से रहित क्रीड़ा की है। तुम अब जाओ, मेरा तुमको नमस्कार है। हे भोग! तुम्हारी लालसा से मुझको परमपद का विस्मरण हो गया था। जैसे माता सुख के निमित्त पुत्र की लालसा करती है तैसे ही मैं सुख जानकर तुम्हारी लालसा करता था। अब तुम जाओ तुमको मेरा नमस्कार है। अब मैं निर्वाणपद को प्राप्त होता हूँ। हे दुःख! तुमको भी नमस्कार है। तेरे उपदेश से मैं आत्मपद को प्राप्त हुआ हूँ, क्योंकि मैं सदा भोग और सुख

चाहता था, और जब सुख प्राप्त होता था तब तुझको भी साथ ले आता था सुख से तेरी उत्पत्ति होती है, सुख की लालसा में तो मैं अनेक जन्म पाता रहा, पर जब सुख आवे तब तुझको भी साथ ले आवे। तुझको देखकर मुझको आत्मपद की इच्छा उपजी और तेरे प्रसाद से मैं परम शीतल पद को प्राप्त हुआ हूँ। हे दुःख! तू तो दुःख था परन्तु मुझको आत्मपद प्राप्त किया इससे तेरा कल्याण हो। तू अब जा। हे मित्र! संसार में जीना असार है, जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होता है। तूने मेरे साथ बड़ा उपकार किया कि अपना नाश किया और मुझको सुख प्राप्त किया क्योंकि जब तू मुझको प्राप्त न था तो मैं आत्मपद के निमित्त कब यत्न करता था। तूने अपना नाश करना माना परन्तु मुझको सुख प्राप्त किया। हे मित्र! तू बांधवों की नाईं चिरकाल पर्यन्त मेरे साथ रहा और कदाचित् मुझसे दूर न हुआ मैंने तेरा नाश नहीं किया पर तूने अपना नाश आप ही किया है। तू मुझको जब प्राप्त हुआ था तब मुझको विवेक उत्पन्न हुआ, उस विवेक ने तेरा नाश किया है इससे तुझको मेरा नमस्कार है। और हे माता[1] तृष्णा! तुझको भी नमस्कार है। तू सदा मेरे साथ रही है और कदाचित् त्याग नहीं किया। जैसे अपने बालक का त्याग माता नहीं करती तैसे ही तूने मेरा त्याग नहीं किया। अब तू जा। हे कामदेव! तुझने आपही विपर्यय होकर अपना नाश किया। जब तू बहिर्मुख था तब जीता था और जब अन्तर्मुख हुआ तब तू मिट गया। तुझको नमस्कार है। हे सुकृतो! तुमको नमस्कार है। तुमने भी बड़ा उपकार किया कि नरकों से निकालकर स्वर्गों में डाला, परन्तु अन्त में सबका वियोग होना है इससे तुम भी जाओ। हे दुष्कृतो! तुम भी जाओ। विकर्मरूपी तुम्हारा क्षेत्र है और युवा अवस्था बीज है उससे दुःख फल होता है तुम्हारे साथ भी संयोग हुआ था इससे तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाओ। हे मोह! तुमको भी नमस्कार है, तुझसे चिरकाल में बँधा था और नाना प्रकार के स्थानों को प्राप्त होता था और तू भय दिखाता था उससे मैं भय पाता था। इससे तुझको

---

१ वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः गात्राणि शिथिलायन्तेतृष्णे तरुणा० ते ॥१॥

नमस्कार है, अब तू जा । हे गिरिकन्दरा ! तुझको भी नमस्कार है । तुममें मैंने चिरकाल तप किया है । हे बुद्धि ! हे विवेक ! तुमको भी नमस्कार है । तुमने मेरे साथ उपकार किया है कि संसारबन्धन से मुक्त किया । तुम भी जाओ । दण्ड और तूँबा । तुमको भी नमस्कार है । तुम भी जाओ । बहुत काल तुम भी मेरे सम्बन्धी रहे हो । हे देह ! रक्तमांस का पिंजर होकर तू मेरे साथ बहुत काल रही है और तूने उपकार किया है । विवेक उपजाने का स्थान तू ही है, तेरे संयोग से मैंने परमपद पाया है तू भी अब जा, तुझको नमस्कार है । हे संसार के व्यवहारो ! तुमको भी नमस्कार है, तुम्हारे में मैंने बहुत किया की है । ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जिससे मैंने व्यवहार न किया हो, ऐसा कर्म कोई नहीं जो मैंने न किया होगा और ऐसा देश कोई नहीं जो देखा न होगा । अब सबको नमस्कार है । हे इन्द्रियों, प्राण और मनादिक ! तुमको नमस्कार है ! तुम्हारा हमारा चिरकाल संयोग था अब वियोग हुआ, क्योंकि जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होता है । इससे तुम्हारा हमारा भी वियोग होता है । नेत्रों की ज्योति सूर्यमण्डल में जा लीन होगी, घ्राणों की गन्ध पृथ्वी में लीन होगी और प्राण त्वचा पवन में, श्रवण आकाश में, मन चन्द्रमा में और जिह्वा रस में लीन होगी । इसी प्रकार सब अपने-अपने अंश में लीन होंगे । जैसे लकड़ियों के जले से अग्नि शान्त हो जाती है, शरत्काल में मेघ शान्त हो जाता है, तेल से रहित दीपक निर्वाण हो जाता है और सूर्य के अस्त हुए प्रकाश शान्त हो जाता है तैसे ही मनादिक शान्त हो जावेंगे । हे रामजी ! ऐसे विचार करते करते उसका मन सर्वकार्य से रहित हो प्रणव के ध्यान में लगा और सर्व-दृश्य से शान्त और मोहरूपी मल को त्यागकर प्रणव के विचार में लगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे द्व्यशीतितमस्सर्गः ॥८२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उसने शब्दब्रह्म प्रणव का उच्चार किया और पञ्चम भूमिका जो चित्त की अवस्था है उसको प्राप्त हुआ । भीतर-बाहर के स्थूल-सूक्ष्म पदार्थों और त्रिलोकी के सब संकल्पों को त्यागकर वह अक्षोभरूप स्थित हुआ जैसे चिन्तामणि अपने प्रकाश

में स्थित होती है, जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने आपमें स्थित होता है, जैसे मन्दराचल के निकलने से क्षीरसमुद्र स्थित होता है और मथने से रहित मन्दराचल स्थित होता है जैसे कुम्हार का चक्र फिरता फिरता ठहर जाता है जैसे सूर्य के अस्त हुए जीवों की व्यवहार क्रिया ठहर जाती है, जैसे मेघ से रहित शरत्काल का आकाश निर्मल होता है और प्रकाश तन से रहित होता है, तैसे ही फुरने से रहित उसका मन शान्ति को प्राप्त हुआ। प्रणव का ध्यान करके फिर उस वृत्ति के अन्त को प्राप्त हुआ और फिरमन्त्र को भी त्याग—जैसे महापुरुष क्रोध को त्यागते हैं तैसे ही वृत्ति को त्यागा। फिर तेज का प्रकाश उदय हुआ उसको भी निमेष में त्यागा। आगे न तेज है, न तम है उसमें अभाववृत्ति रहती है उसको भी निमेष में त्यागा, तब जैसे नूतन बालक की जन्म से पदार्थज्ञान से रहित अवस्था होती है तैसे ही अवस्था प्राप्त हुई। तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्तिपद है उसका आश्रय किया और महाचल जो सुमेरु की नाईं स्थिर अवस्था है उसको प्राप्त हुआ। फिर केवल अचेतन चिन्मात्र तुरीया निरानन्द आनन्दपद में जिसमें स्वरूप से भिन्न और आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। वह असत् और सत्रूप है। सर्वक्रिया से अतीत है, इस कारण असत् है और अनुभवरूप है इस कारण सत्यरूप है! ऐसे अशब्दपद को वह प्राप्त हुआ जो परमशुद्ध पावन और सर्वभाव के भीतर प्राप्त है और सर्वभाव शब्द से रहित है। जिसको शून्यवादी-शून्य, ब्रह्मवादी-ब्रह्म, विज्ञानवादी-विज्ञान, सांख्य मतवालेपुरुष-ईश्वर शैवा-शिव, वैष्णव-विष्णु, शक्ति-परमशक्ति, कालवादी-काल, आत्मवादी-आत्मा और माध्यमिक-माध्यम इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं सो एक परब्रह्म को ही कहते हैं, जो सर्वदा, सर्वकला, सर्वप्रकार, सर्व में सर्वरूप है। ऐसे सर्वात्मा को वह मुनीश्वर प्राप्त हुआ। जिस आनन्दसमुद्र के बल से सबको आनन्द होता है ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनन्द को वह प्राप्त हुआ और वही रूप हो गया। जो अन्य और निरन्य, निरञ्जन, सर्व, असर्व, अजर-अमर सबके आदि सकलङ्क-निष्कलङ्क

है ऐसे आकाश से निर्मल पद को वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमस्सर्गः ॥ ८३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! दुःखरूप संसारसमुद्र के पार हो वीतव मुनीश्वर उस परमपद को प्राप्त हुआ जिस पद के प्राप्त हुए जीव फिर जन्ममरण को नहीं पाता और जिस पद में स्थित हुआ परमशान्त उपशम आनन्द को प्राप्त होता है—जैसे समुद्र में पड़ी हुई बुन्द समुद्र हो जाती है तैसे ही ब्रह्मसमुद्र में वह ब्रह्म हो गया और शरीर जो था वह विरस होकर गिर पड़ा जैसे शीतकाल में वृक्षों के सूखे पत्र गिर पड़ते हैं। शरीररूपी वृक्ष में हृदयरूपी आलय था और उसमें प्राणरूपी पक्षी रहता था सो चिदाकाश में प्राप्त हुआ जैसे गोफन से पत्थर धावता है तैसे ही जो प्राप्त हुआ और अपने स्वरूप में स्थित हुआ। हे रामजी ! यह मैंने वीतव की कथा तुझको सुनाई है सो अनन्त विचारकर युक्त है। इस प्रकार विचारकर वीतव विश्रामवान् हुआ है। तुम भी उसको विचारकर सिद्धता के सार को प्राप्त हो और दृश्य की चिन्तना को त्याग के सावधान हो। हे रामजी ! जो कुछ मैंने तुझसे पूर्व कहा है कि उस पद में प्राप्त हुआ फिर कुछ पाने योग्य नहीं रहता और अब जो कुछ कहता हूँ और जो कुछ पीछे कहूँगा उसको विचारो। मुक्ति ज्ञान ही से होती है और ज्ञान ही से सब दुःख नष्ट होते हैं, ज्ञान ही से अज्ञान निवृत्ति होता और अज्ञान ही से परम सिद्धता को प्राप्त होता है। पाने योग्य यही वस्तु है, और कोई दुःखों का नाश नहीं कर सकता। यह निश्चय है कि ज्ञान से सब फाँसी कट जाती है और ज्ञान ही से वीतव ने मन को चूर्ण किया। हे रामजी ! वीतव की संवित् जगत् के अतीत हो गई। जो कुछ दुःख है वह मन से होता है और मन के उपशम हुए सब जगत् अनुभवरूप हो जाता है। वीतव भी मनोमात्र था, मैं भी मनोमात्र हूँ, तू भी मनोमात्र है और पृथ्वी आदि जगत् भी सब मनोमात्र है, मन से भिन्न कुछ नहीं। जहाँ मन होता है वहाँ जगत् होता है, मन ही जगत्रूप है और जगत् ही मनरूप है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह मन की दशा को त्याग के केवल चिदानन्द आत्म-

तत्त्व में स्थित होता है और रागद्वेष आदि विकार उसके मिट जाते हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवविश्रान्तिसमाप्ति-
र्नाम चतुरशीतितमस्सर्गः ॥ ८४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वीतव की नाईं विदितवेद होकर तुम भी रागद्वेष से रहित स्थित हो। जैसे तीस सहस्र वर्ष वीतव वीतशोक और जीवन्मुक्त होकर विचरा है तैसे ही तुम भी विचरो। और भी बोध-वान् राजा और मुनीश्वर हुए हैं, जैसे वे उस पद में प्राप्त हुए राज्यादिक व्यवहार में रहे हैं तैसे ही तुम भी जीवन्मुक्त होकर रहो। हे रामजी ! सुख दुःख कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है, तुम किस निमित्त शोक करते हो ? बहुत विदितवेद पृथ्वी में विचरते हैं परन्तु शोक को कदाचित नहीं प्राप्त होते—जैसे तुम अब शोक नहीं करते हो। हे रामजी ! तुम अब स्वस्थ उदार शम और सर्वज्ञ हो, अब तुमको फिर जन्म न होगा। जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूप में स्थित है वह हर्ष-शोक को प्राप्त नहीं होता। जैसे सिंह वानर और शृगाल आदिक के वश नहीं होता है तैसे ही जीवन्मुक्त विकारों से रहित होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! इस प्रसंग में मुझको संदेह हुआ है उसको जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट हो जाता है तैसे ही नाश करो। हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ ! जीवन्मुक्त के शरीर में शक्ति क्यों नहीं दृष्टि आती कि आकाश में उड़ता फिरे और सूक्ष्म रूप से और शरीर में प्रवेश कर जावे इत्यादिक ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आकाशगमनादिक जो सिद्धि हैं सो तपादिक कर्मों की शक्ति हैं। जो कुछ जगत् विचित्र दिखाई देना और फिर गुप्त हो जाना इत्यादिक हैं वे वस्तु द्रव्य, क्रिया के स्वभाव हैं, आत्मज्ञान के नहीं। हे रामजी ! कोई द्रव्य, क्रिया और काल को यथा-क्रम साधता है उसको ही शक्ति प्राप्त होती है और ज्ञानी साधे अथवा अज्ञानी साधे उसको शक्ति प्राप्त होती है परन्तु वह शक्ति आत्मज्ञान का फल नहीं। आत्मज्ञानी को आत्मज्ञान की ही सिद्धता होती है, वह आत्मा से ही तृप्त होता है और सिद्धि जो अविद्यारूप हैं उनकी ओर नहीं धावता। जो कुछ जगत् है वह उसने अविद्यारूप जाना है इससे

वह पदार्थों में नहीं डूबता । जो अज्ञानी है वह सिद्धता के निमित्त इन पदार्थों को साधता है और जो ज्ञानवान् है वह इन पदार्थों के वास्ते यत्न नहीं करता । यत्न करने से ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो इन्द्रादिकों के ऐश्वर्य को पाता है । और वह ज्ञान की शक्ति नहीं, द्रव्य आदि की शक्ति है सो अविद्यारूप है । अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं ज्ञानवान् नहीं धावते, क्योंकि वे सबसे अतीत हैं । जिसने सब इच्छा का त्याग किया है और आत्मपद में संतोष पाया है वह इनकी इच्छा नहीं करते । इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाई के निमित्त होती है अथवा मान और जीने और सिद्धि के निमित्त होती है । अज्ञानी को भोगों की सिद्धता की और मान की इच्छा नहीं होती, क्योंकि ये सब अनात्म धर्म हैं और वह नित्यतृप्त, परमशान्तरूप, वीतराग, निर्वासनिक पुरुष है और आकाश की नाईं सदा अपने आपमें स्थित हैं । जैसे सुख स्वाभाविक आता है तैसे ही दुःख भी स्वाभाविक आता है शरीर के सुख दुःख की अवस्था में वह चलायमान नहीं होता, नित्यतृप्त और असंग होता है और जीवन मरण की वृत्ति उसको नहीं फुरती सबमें सम रहता है। जैसे समुद्र में नदियाँ प्रवेश करती हैं और समुद्र अपनी मर्यादा में स्थित रहता है तैसे ही ज्ञानवान् को क्षोभ नहीं प्राप्त होता । हे रामजी ! जो कुछ ज्ञानवान् को प्राप्त होता है उसे वह आत्मा में अर्चन करता है, उसको करने में कुछ अर्थ नहीं और न करने में कुछ प्रेत्यवाय है । उसको किसी का आश्रय नहीं, सदा अपने स्वरूप में स्थित है और यह मन्त्रसिद्धि कालकर्म से होता है । एक योगक्रिया ऐसी है कि उसके साधने से उड़ने की शक्ति हो आती है, एक मन्त्रों से शक्ति होती और एक गुटका मुख में रखने से उड़ने इत्यादिक की शक्ति होती है, शक्ति की नीति प्रथम ही हो रहती है । उससे अन्यथा नहीं होती। हे रामजी ! जैसी शक्ति जिस साधन से नियत हुई है उसको सदाशिव भी अन्यथा नहीं कर सकते, क्योंकि वह स्वाभाविक स्वतः सिद्ध है—जैसे चन्द्रमा में शीतलता और अग्नि में उष्णता है इत्यादिक आदि नीति है उसको कोई दूर नहीं कर सकता और सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् हैं वे भी अन्यथा नहीं कर

सकते। हे रामजी! जिस द्रव्य में मारने की सत्ता है वह मारता है और मद्य में मत्त करने की शक्ति है तैसे ही द्रव्य योग, काल आदिक में सिद्धता शक्ति नियत हुई है। जैसे एक औषध में क्लेश करने की शक्ति है तो उसके खाने से क्लेश होता है तैसे ही इनमें अपनी-अपनी शक्ति है। जो इनको साधता है उसको ये प्राप्त होती हैं। आत्मज्ञानी जो उसको साधन करे तो वह कर्त्ता में भी अकर्त्ता है। आत्मज्ञान के पाने में सिद्धि कुछ उपकार नहीं कर सकती परन्तु जो इनकी वाञ्छा करे तो यत्न करके पाता है—यत्न बिना नहीं पाता। आत्मज्ञानी को इच्छा भी नहीं होती क्योंकि आत्मलाभ से उसकी सब इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं। हे रामजी! जितने लाभ हैं उनसे परम उत्तम आत्मलाभ है। आत्मा को पाकर फिर किसी की इच्छा नहीं होती। जैसे अमृत के पान किये और जल की इच्छा नहीं होती तैसे ही आत्मा के लाभ से और इच्छा नहीं होती। ऐसा आत्मलाभ जिसने पाया है उसको इन सिद्धियों की इच्छा कैसे हो? जैसी-जैसी किसी की इच्छा होती है उसको तैसा ही प्राप्त होता है। ज्ञानी हो अथवा ज्ञान से रहित हो इच्छा और प्रयत्न के अनुसार ही प्राप्त होती है। यह जो वीतव था उसको इच्छा कुछ न थी और प्रथम जो सूर्य के पास जाने की शक्ति दृष्टि आई थी सो क्रिया के साधने से थी, पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कुछ न रही। हे रामजी! जो कुछ किसी को फल प्राप्त होता है सो अपने प्रयत्न से प्राप्त होता है। जो ज्ञानवान् है वह सदा तृप्त रहता है उसको इष्ट-अनिष्ट की इच्छा कुछ नहीं फुरती। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तीन सौ वर्ष वीतव मुनीश्वर समाधि में रहा तो उसका शरीर पृथ्वी में पृथ्वी क्यों न हो गया और सिंह, भेड़िये, सियार आदिक उसको क्यों न भोजन कर गये? पीछे विदेह-मुक्त हुआ, प्रथम क्यों न हुआ? पृथ्वी में दबे हुए शरीर को निकालने के निमित्त बड़ा यत्न क्यों किया, इन संशयों को निवारण करो! वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संवित् वासना के साथ बँधी हुई सुख दुःख को भोगती है और मलीनभाव से घिरी हुई है, जो वासना से रहित शुद्ध सत्तारूप है और जो सुख दुःख के भोग से रहित है और किसी

कारण छेदी नहीं जाती । हे रामजी ! जिस-जिस पदार्थ में चित्त लगता है वही-वही पदार्थ स्वरूप में भासते हैं, यह पदार्थ की शक्ति है । जैसी पदार्थों में शक्ति होती है तैसे ही भासती है, इस कारण बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं तो भी समाधि के बल से उसका शरीर ज्यों का त्यों रहता है, क्योंकि चित्त जिस पदार्थ में लगता है उसका रूप हो जाता है । जैसे मित्र को मित्रभाव से देखता है तो स्वाभाविक ही प्रसन्न होता है और शत्रु को देखकर चित्त में स्वाभाविक ही अप्रसन्नता फुर आती है, मीठी वस्तु को देखकर चित्त स्वाभाविक ही लोलुप हो जाता है और कटुक में विरसता को प्राप्त होता है, मार्ग चलनेवाले का चित्त मार्ग के पर्वत और वृक्षों के राग से बन्धायमान नहीं होता, चन्द्रमा के निकट गये से शीतलता होती है और सूर्य के निकट उष्णता प्राप्त होती है सो पदार्थ की शक्ति है । जिस पदार्थ के साथ वृत्ति का स्पर्श होता है उसका स्वाभाविक आरम्भ सफल होता है । तैसे ही योगी जब देह और इन्द्रियों की वासना और ममत्वभाव को त्याग करके समभाव में प्राप्त होता है तब उसको समभाव का अनुभव होता है अर्थात् सबमें एक ही भासता है । इस कारण शरीर को सिंहादिक कोई भोजन नहीं कर सकते और जो जीव उसके घात करने को आते हैं वे हिंसाभाव को त्याग अहिंसक हो जाते हैं । वीतव का शरीर जो छेद को न प्राप्त हुआ और न पृथ्वी में पृथ्वी हो गया उसका यह कारण है कि सर्वत्र समता आकाश एक ही स्थित है और काष्ठ, लोष्ट, पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सबमें एक अनुस्यूत है, जहाँ पुर्यष्टका होती है वहाँ भासता है और जहाँ पुर्यष्टका नहीं होती वहाँ नहीं भासता, जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहाँ स्वच्छ ठौर, दर्पण, जल आदि होते हैं वहाँ भासता है और जहाँ उज्जवल ठौर नहीं होता वहाँ प्रतिबिम्ब नहीं भासता तैसे ही जहाँ पुर्यष्टका है वहाँ संवित् भासती है, अन्यथा नहीं भासती । इस कारण वीतव की संवित् जो समभाव में स्थित है उसको किसी तत्त्व और जीव का क्षोभ नहीं होता । पञ्चतत्त्वों का क्षोभ तब होता है जब प्राण फुरते हैं और जब प्राण फुरने से रहित होते हैं तब तत्त्वों का क्षोभ

नहीं होता, वीतव की प्राणों के भीतर और बाहर की स्पन्दकला शान्त हो गई थी और प्राण और चित्तकला दोनों फुरने से रहित थीं, इससे उसका हृदय भी क्षोभित न हुआ। हे रामजी! देहरूपीगृह में जब चित्त और वायु का स्पन्द शान्त हो जाता है तब शरीर नष्ट हो जाता है और सब सुमेरु की नाईं स्थित हो जाता है, तब किसी की सामर्थ्य नहीं होती कि इसको क्षोभ करे और नाश करे। योगीश्वर का चित्त और प्राण निस्पन्द हो जाते हैं। वह इनको वश करके लगाता है तब उसको न तत्त्वों का क्षोभ होता है, न पित्त, कफ का क्षोभ होता है और न और कुछ क्षोभ होता है। इस कारण योगी का शरीर सहस्र वर्ष पर्यन्त भी ज्यों का त्यों रहता है, नष्ट नहीं होता। जैसे वज्र को कोई चूर्ण नहीं कर सकता तैसे ही उसके शरीर को कोई नष्ट नहीं कर सकता—सब की शक्ति उसपर कुण्ठित हो जाती है। इस कारण वीतव का शरीर ज्यों का त्यों रहा। पहले वह विदेहमुक्त क्यों न हुआ सो भी सुनो। हे रामजी! जो तत्त्वज्ञ और विदितवेद, वीतराग महाबुद्धिमान हैं जिनकी अभिमानरूपी गाँठि टूट पड़ी है वे पुरुष स्वतन्त्र स्थित होते हैं, उनका न कोई प्रारब्धकर्म है, न संचितकर्म है और न वर्त्तमान का कर्म है। तत्त्ववेत्ता सबसे मुक्त, स्वतन्त्र और स्वेच्छित विचरता है और जैसी इच्छा करे तैसी शीघ्र ही होती है। हे रामजी! वीतव को जब अकस्मात् से जीने का स्पन्द फुर आया तब यह कुछ काल जीता रहा और जब उसकी संवित् में विदेहमुक्त होने का स्पन्द फुरा तब विदेहमुक्त हो गया। ज्ञानवानों की स्थिति स्वाभाविक स्वतन्त्र होती है, जिसकी वे वाञ्छा करते हैं सो तत्काल ही हो जाता है, और मन आत्मपद में स्थित होता है, उनको कुछ कृत और कर्तव्य नहीं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धिलाभविचारो
नाम पञ्चाशीतितमस्सर्गः ॥ ८५ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि जब विचार से वीतव का चित्त शान्त हो गया तब उसको मैत्री, करुणादिक गुण प्राप्त हुए, परन्तु जब विवेक से उसका चित्त नष्ट हो गया तो फिर मैत्री आदिक

गुण कहाँ आन प्राप्त हुए ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चित्त का नाश दो प्रकार का है। जीवन्मुक्त का चित्त अचित्तरूप हो जाता है और विदेह-मुक्त का चित्त स्वरूप से नष्ट हो जाता है। जैसे भुना दाना होता है तैसे ही जीवन्मुक्त का चित्त देखने में चित्तरूप है सार्थक नहीं और जैसे दाना नष्ट हो जावे तैसे ही विदेहमुक्त का चित्त देखनेमात्र भी नहीं रहता। हे रामजी ! चित्त की सत्यता ही दुःखों का कारण है और चित्त की असत्यता ही सुखों का कारण है। जिस चित्त में विषयों की वासना फुरती है सो चित्त जन्मों का देनेवाला है और दुःखों का कारण है। गुणों के संग से अहंमम भाव में रहता है और चित्त की सत्यता से जीव कहाता है। हे रामजी ! जब तक चित्त विद्यमान है तब तक अनन्त दुःख होता है। दुःखरूपी वृक्ष का बीज चित्त ही है। जब चित्त नष्ट होता है तब कल्याण होता है। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण ! मन किसका नाम है ? कैसे नष्ट होता है और कैसे अस्त होता है सो कहिये ? वशिष्ठजी ने कहा, हे प्रश्नकर्त्ताओं में श्रेष्ठ ! चित्तसत्ता का लक्षण मैंने तुमसे कहा है, अब चित्त मृतक का लक्षण सुनो। जिसको सुख और दुःख की दशा स्वरूप से चला नहीं सकती। जैसे सुमेरु को पवन चला नहीं सकता तैसे ही जिसके चित्त को दुःख चला नहीं सकता तिसका चित्त मृतक जानो, अर्थात् जो चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है उस चित्त से मिथ्या चिन्ता नष्ट हो जाती है। जैसे भुने दाने में अंकुर नष्ट हो जाता है तैसे ही उसका चित्त नष्ट हो जाता है। जिसको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं फुरता वह चित्त मृतक हुआ है। हे रामजी ! जिसके चित्त को अहं इच्छा द्वेषादिक विकार तुच्छ न कर सके उसका चित्त मृतक जानो और जिसको इन्द्रियों के विषय इष्ट-अनिष्ट न कर सके और रागद्वेष और ग्रहण त्याग की द्वैतभावना न उपजे ज्यों का त्यों रहे उसी पुरुष का चित्त मृतक जानो। जिसका चित्त नष्ट हुआ है उसे जीवन्मुक्त जानो। जिसको संसार के इष्ट पदार्थों में राग होता है वह ग्रहण की इच्छा करता है और अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेष करके त्यागने की इच्छा करता है। अहंममभावसंयुक्त देह में जो अभिमान है इससे आपको सुखी दुःखी मानता है यदि वासना संयुक्त है सो चित्त जीता है—यह चित्त-

सत्यता है जब चित्त संसार से विरक्त हो और सत्संग और सत्शास्त्रों का श्रवण और मनन और स्वरूप का अभ्यास करे तब चित्त अचित्त हो जाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है और तभी जीवन्मुक्त होकर विचरता है। जिस प्रकार मैत्री आदिक गुण जीवन्मुक्त में होते हैं सो भी सुनो। हे रामजी ! चित्त में जो संसार की सत्यतारूपी मैल है यही चित्त-भाव है। वह जब आत्मज्ञान से नष्ट हो जाता है तब मैत्री आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं। जैसे सूर्य के उदय हुए तम नष्ट जाता है और प्रकाश उदय होता है और जैसे भूने दाने का अंकुर जल जाता है तैसे ही ज्ञान से चित्त का चित्तत्वभाव नष्ट हो जाता है और मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं। तब देखनेमात्र चित्त दीखता है ब्रह्मवेत्ता अज्ञानी की नाईं यत्न करता भासता है परन्तु अज्ञानी का चित्त जन्म का कारण है ज्ञानी का चित्त जन्म का कारण नहीं। जैसे कच्चा दाना उगता है, भुना नहीं उगता, तैसे ही अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता। जैसे चन्द्रमा राहु से छूटता तब चित्त में मैत्री, करुणा आदिक गुण उदय होते हैं और जैसे वसन्तऋतु के आये बेलें सब प्रफुल्लित हो जाती हैं तैसे ही चित्तभाव मिटे से मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक फुरते हैं। जो विदेहमुक्त होता है उसका चित्त स्वरूप से भी नष्ट हो जाता है और वहाँ गुण कोई नहीं रहता वह अवस्था और कोई नहीं जानता, विदेहमुक्त ही जानता है। उसमें द्वैतकल्पना कुछ नहीं फुरती और निर्मल पावन पद है। हे रामजी ! जीवन्मुक्त का चित्त स्वरूप में अचित्त होकर रहता है और विदेहमुक्त में चित्त स्वरूप से नष्ट हो जाता है इस कारण जीवन्मुक्त में मैत्री आदिक गुण पाये जाते हैं। आत्मा जो निर्मल और निष्कलङ्क है सो चित्त के नष्ट हुए विदेहमुक्त में रहता है, उसमें गुणों की कल्पना कोई नहीं फुरती वह परमपावन निर्मल पद में स्थित होता है और शान्ति आदिक गुण भी नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि चित्त स्वरूप से नष्ट हो जाता है। चित्त के नष्ट हुए चित्त की अवस्था कहाँ रही। तब न कोई गुण रहता है न अवगुण रहता है, न वह गुणों से उत्पन्न हुआ सार कहाता है और न अवगुणों से उत्पन्न हुआ असार कहाता है, न लोलुप

है, न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है, न उदय है न अस्त है, न हर्ष है, न शोक है, न तेज है, न तम है, न दिन है, न रात्रि है, न संध्या है, न दिशा है, न आकाश है, न अर्थ है, न अनर्थ है, न वासना है, न अवासना है, न अञ्जन है, न निरञ्जन है, न सत्य है, न असत्य है, न चन्द्रमा है, न तारे हैं और न सूर्य है ऐसा जो सर्वकलना से रहित शरत्काल के आकाश की नाईं निर्मल और बुद्धि से परे पद है उसमें और की गम नहीं। जैसे आकाश के स्थान को पवन जानता है तैसे ही उसकी अवस्था को वही जाने। वहाँ स्थित हुए सब दुःख शान्त हो जाते हैं और ब्रह्मानन्द में लीन हो जाता है। ज्ञानवान् आकाश की नाईं निर्मलपद को प्राप्त होता है जिसके पाये से और पाना कुछ नहीं रहता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे ज्ञानावविचारो नाम षडशीतितमस्सर्गः ॥ ८६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! परमाकाश के कोश में एक पहाड़ है उस पर जगत्‌रूपी एक वृक्ष है, तारे उसके फूल हैं, मेघ पत्र हैं, सूर्य, चन्द्रमा स्कन्ध है और देवता, दैत्य, मनुष्यादिक सब जीव उस पर पखेरू हैं। सातों समुद्र उस पहाड़ पर बावलियाँ हैं और अनन्त नदियाँ उसमें प्रवेश करती हैं। चतुर्दश प्रकार के भूतजात उसमें उत्पन्न होते हैं और सुखदुःखरूपी फलों से पूर्ण है, और मोहरूपी जल से वह सींचा जाता है सो दृढ़ होकर स्थित हुआ है। उसका बीज कौन है? बोध की वृद्धि के निमित्त यह ज्ञानरूपी सार मुझसे संक्षेप से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस संसार का बड़ा बीज चित्त (अहंता) है, जिसके भीतर आरम्भ की घनता है। जब शुभ अशुभ का आरम्भ शरीर का अंकुर होता है तब शुभ अशुभ करता है, इससे संसार का बीज चित्त ही है, और शरीर का बीज भी चित्त ही है, राजस, सात्त्विक और तामस वृत्ति उसकी टहनियाँ हैं। वही जन्ममरण का भंडार है और सुखदुःखरूपी रत्नों का डब्बा है। ऐसा जो चित्त है वह इस शरीर का कारण है। हे रामजी! जो कुछ जगज्जाल दृष्टि आता है वह सब असत्‌रूप है। चित्त के फुरने से नाना प्रकार के आडम्बर भासते हैं। जैसे गन्धर्वनगर नाना प्रकार के आरम्भ सहित भ्रम

से भासता है और संकल्पपुर भासता है सो असत् है तैसे ही यह जगत् असत् है। जैसे मृत्तिका में घटभाव होता है तैसे चित्त में जगत् का सद्भाव होता है। चित्तरूपी अंकुर के वृत्तिरूपी दो टास होते हैं–एक प्राणों का फुरना और दूसरा दृढ़भावना। जब प्राणस्पन्द होता है और हृदयमात्र में जो एकसौ एक नाड़ी हैं उनकी ओर संवेदनरूप चित्त उदय होता है तब प्राणस्पन्द फुरता है। जब प्राण फुरता है तब शुद्ध सात्त्विक चित्त उपजता है और उसमें जगत् भासता है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसे ही प्राणों में नीलता भासती है। जब प्राणस्पन्द होता है तब चित्तसंवित् उछलती है–जैसे हाथ से ताड़ना किया गेंद उछलता है। जैसे प्राणस्पन्द में सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती है और वहाँ प्रतिबिम्बरूप होकर सात्त्विकभाग में स्थित होती है और महासूक्ष्म से सूक्ष्म है–जैसे वायु में गन्ध रहती है। वही संवित्‌रूप को त्यागकर जब बहिर्मुख धावती है तब उससे नाना प्रकार के जगत् भासते हैं और नाना प्रकार की वासना उठती हैं और उनसे अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। इससे हे रामजी! संवित् को अन्तर्मुख रोकना ही कल्याण का कारण है। जब संवित् स्वरूप में स्थित होती है तब क्षोभ मिट जाता है और जब शुद्ध संवित् में अहं उल्लेख फुरता है तब वेदनरूप होती है सो ही चित्त है, चित्त से अनेक दुःख होते हैं और चित्त का अनर्थ का होना कारण है। जब चित्त न उपजे तब शान्ति हो जाती है और चित्त तब निवृत्त होता है जब प्राणस्पन्द रोकिये अथवा वासना नष्ट हो ध्यान और प्राणायाम से योगीश्वर प्राणों को रोकता है तब चित्त स्थित हो जाता है। यह योग से अनुभव करता है। ज्ञान से जो अनुभव होता है सो भी सुनो। हे रामजी! चित्त वासना से उत्पन्न होता है और वासना विचार से रहित फुरती है जैसे बालकों को जन्म से ही स्तनों से दूध पीने की वृत्ति फुरती है तैसे ही अकस्मात् भावना की दृढ़ता से वासना फुर आती है। हे रामजी! जिसमें पुरुष की तीव्र भावना होती है वही रूप पुरुष का होता है। स्वरूप के प्रमाद से जो भासित होता है उसमें दृढ़ प्रतीत हो जाती है तब उसकी भावना करता है और जगत् की वासना से मोह प्राप्त होता है

स्वतः सिद्ध जो अनुभवरूप आत्मा है उसको जान नहीं सकता। वासना की प्रबलता से स्वरूप का त्याग करता है और भ्रान्तिरूप जगत् को सत्य देखता है—जैसे मद्य से मत्त को पदार्थ और के और भासते हैं तैसे ही मूर्खों को वासना के बल से जगत् के पदार्थ सत्य भासते हैं। हे रामजी! असम्यक्ज्ञान से जीव दुःखी होता है, शान्ति को नहीं प्राप्त होता और मन की चिन्ता से जलता है। मन किसका नाम है सो सुनो। जो सम्यक्ज्ञान से अनात्मा में आत्मभावना हो और वस्तु आत्मा में अवस्तु अनात्मभावना हो उसका नाम मन है। वह मन ऐसे उत्पन्न होता है कि प्रथम चेतन संवित् में पदार्थों की चिंतना होती है फिर तीव्र पदार्थों की दृढ़भावना होती है तब वही चेतन संवित् चित्-रूप हो जाती है। उस चित्त में फिर जन्ममरणादिक विकार उपजते हैं और फिर किसी का ग्रहण और किसी का त्याग करता है। जब ग्रहण और त्याग का संकल्प हृदय से निवृत्त हो तब चित्त भी मृतक हो जावे। जब वासना नष्ट हो जाती है तब मन आत्मपद को प्राप्त होता है। मन का अमन होना ही परम उपशम का कारण है। हे रामजी! जो कुछ जगत् के पदार्थ हैं उनकी अभावना कीजिये और सब अवस्तुभूत जगत् का त्याग कीजिये तब हृदय आकाश में चित्त शान्त होगा। हे रामजी! चित्त का स्वरूप इतना है। जब पदार्थों से रस उठ जावे तब चित्त फिर नहीं उपजता। जबतक पदार्थों का रस फुरता है तबतक स्थल रहता है और असम्यक्ज्ञान से अनात्मा में जो आत्मभावना है ज्यों ज्यों यह दृढ़ होती है त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष अनर्थ के निमित्त बढ़ता जाता है और ज्यों ज्यों अनात्मा से आत्मबुद्धि निवृत्त हो जाती है अर्थात् अव-स्तु में वस्तुबुद्धि नहीं होती त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण होता जाता है सो कल्याण के निमित्त है। जब चित्त यथार्थ देखता है तब चित्त अचित्त हो जाता है, सब आशा निवृत्त हो जाती है और परम शान्ति और शीतलता हृदय में स्थित होती है तब पदार्थों को ग्रहण भी करता है परन्तु हृदय से रागसंयुक्त वासना निवृत्त होती है तो उससे चित्त शान्ति को प्राप्त होता है। हे रामजी! जीवन्मुक्त में भी चेष्टा दृष्टि आती है परन्तु जन्मका

कारण नहीं होती क्योंकि मन में मन का सद्भाव नहीं होता है। जैसे नटुवा अभिमान से रहित अनेक प्रकार के स्वाँग धरता है तैसे ही वह अभिमान से रहित चेष्टा करता है और जैसे कुम्हार का चक्र भ्रमता भ्रमता तोड़ना से रहित हुआ शनैःशनैः स्थिर हो जाता है तैसे ही ज्ञानवान् का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है परन्तु जन्म का कारण नहीं होता और प्रारब्धभोग समाप्त होता है तब स्वाभाविक ठहर जाता है। जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही राग से रहित ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं होती, देखने मात्र ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है। जैसे भुना और कच्चा बीज एक समान भासता है परन्तु कच्चा उगता है और भुना नहीं उगता तैसे ही ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं होती क्योंकि उसका चित्त शान्त हो जाता है। हे रामजी! जिसकी चेष्टा अभिमान से रहित है वह जीवन्मुक्त कहाता है। उसका चित्त केवल चिन्मात्र को प्राप्त हुआ है और वह जब शरीर को त्यागता है तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है। हे रामजी! चित्त के दो बीज हैं—एक प्राणों का फुरना और दूसरा वासना का फुरना। जब दोनों में एक का अभाव हो जाता है तब दोनों नष्ट हो जाते हैं—ये परस्पर कारणरूप हैं। जैसे ताल से मेघ जल पान करके फिर वर्षा से ताल को पुष्ट करता है सो परस्पर कारणरूप है, तैसे ही प्राणस्पन्द और वासना परस्पर कारणरूप हैं। जैसे बीज से अंकुर होते हैं और अंकुर से बीज होते हैं तैसे ही प्राणस्पन्द से वासना होती है और वासना से प्राणस्पन्द होता है। ये दोनों चित्त के कारण हैं। जैसे फूल बिना सुगन्ध नहीं और सुगन्ध बिना फूल नहीं होता तैसे ही वासना बिना प्राण नहीं होते और प्राण बिना वासना नहीं होती। हे रामजी! जब वासना फुरती है तब संवित् में क्षोभ होता है और वह प्राणों को जगाती है तब उससे जगत् उपजता है। जब हृदय में प्राणस्पन्द के धर्म होते हैं तब संवित् क्षोभवान् होता है और चित्तरूपी बालक उपजता है। इस प्रकार वासना और प्राण दोनों चित्त के कारण हैं। जब दोनों में एक का नाश हो जावे तब दोनों नाश हो जावें और चित्त का भी नाश हो जावे। हे रामजी! चित्तरूपी एक वृक्ष

है, सुखदुःखरूपी उसके स्कन्ध हैं, चिन्तारूपी फल हैं, कार्यरूपी पत्र हैं, वृत्तिरूपी बेल से वेष्टित हुआ है और रागद्वेषरूपी दो बगले उस पर आन बैठे हैं तृष्णारूपी काली सर्पिणा से वेष्टित है और इन्द्रियाँरूपी पक्षी उस पर आन बैठे हैं, इच्छादिक रोगों से पुष्ट होता है और अज्ञान इसका मूल है। जब अवासनारूपी खड्ग से शीघ्र ही काटा जाता है तब संसार की अभावना और स्वरूप की भावना से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जैसे तीक्ष्ण पवन से पका हुआ फल वृक्ष से शीघ्र ही गिर पड़ता है तैसे ही आत्मभाव से फल गिर पड़ता है। हे रामजी! चित्तरूपी आँधी ने सब दिशा मलीन करके प्रकाश को घेर लिया है और तृष्णारूपी तृण उसमें उड़ते हैं। शरीररूपी स्तम्भाकार वायगोला अज्ञानरूपी कुण्ड से उपजा हुआ बड़े क्षोभ को प्राप्त करता है। जब हृदय में प्रकाश हो तब तम को दूर करे और जब स्पन्द रोकिये तब धूलि शान्त हो जाती है। आत्मविचार से जब वासना रहित हो तब शरीररूपी धुआँ शान्त हो जावे। हे रामजी! प्राणों के रोकने से शान्ति होती है और वासना के न उदय होने से चित्त स्थिर हो जाता है। प्राणस्पन्द और वासना का बीज संवेदन है, जब शुद्ध संवित्मात्र से संवेदन को त्याग करे तब वासना और प्राण दोनों न फुरें। जैसे वृक्ष का बीज और मूल काट डालिये तो फिर नहीं उगता, तैसे ही इनका मूल संवेदन है। जब संवेदन का अभाव हो तब दोनों नहीं बनते। संवेदन का बीज आत्मसत्ता है, संवित्सत्ता से संवेदन प्रकट हुआ है उससे भिन्न नहीं। जैसे तिलों में तेल के सिवा और कुछ नहीं होता तैसे ही संवित्सत्ता के सिवा हृदय में और कुछ नहीं पाया जाता-वही संकल्प द्वारा संवेदन को देखता है। जैसे स्वप्न में मनुष्य अपनी मृत्यु देखता है और देशान्तर को प्राप्त होता है तैसे ही आत्मसत्ता संवेदनरूप होती है अर्थात् चिन्मात्र संवित् में संवेदन का उत्थान होता है कि 'अहं अस्मि' तब संवेदन जगत्जाल दिखाती है। अपना ही संवेदन उठकर आपको भ्रम दिलाता है—जैसे बालक को अपने संकल्प से उपजा वैताल सत्य भासता है और जैसे स्थाणु में पुरुष भासता है तैसे ही संवित् में संवेदन भासता है। हे रामजी! असम्यक्ज्ञान से संवेदनरूप हो जाता

है तो उसमें आत्मबुद्धि होती है और सम्यक्ज्ञान से लीन हो जाता है। जैसे रस्सी में असम्यक्ज्ञान से सर्प भासता है तैसे ही आत्मा में संवेदन भासता है। तीनों जगत् ब्रह्म संवित्‌रूप हैं, संवेदन भी कुछ भिन्न नहीं। जिनको यह निश्चय दृढ़ होता है उनको बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञानी कहते हैं। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जो जगत् है उसमें वस्तुबुद्धि त्याग करने से भी संसार के पार होता है और जो अवस्तुरूप जानकर न त्यागेगा तो जगत् बड़े विस्तार को पावेगा। हे रामजी! संवेदन का जो उत्थान होता है सो बड़े दुःखों का देनेवाला है और संवेदन जो जड़वत् अजड़ है वह परम सुख सम्पदा का कारण है सो उत्थान से रहित आनन्दस्वरूप है। जिसको संवेदन उत्थान से रहित असंवेदन संवित् आत्मा की बुद्धि हुई है वह संसारसमुद्र से पार होता है। रामजी ने पूछा, हे प्रभो! जड़ता से रहित असंवेदन कैसे होता है और असंवेदन से जड़ता कैसे निवृत्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो सब ठौर में आसक्त नहीं होता और कहीं चित्त की वृत्ति नहीं लगती और जिसमें जीवत्व को कुछ ज्ञान न रहे वह असंवेदन जड़ता से रहित संवेदन स्पन्दरूप है जिससे दृश्य भासता है सो दृश्य की ओर से जड़ है और स्वरूप में चेतन है वह अजड़ कहाता है। हे रामजी! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है उससे संवेदन का स्पर्श कुछ न हो ऐसा संवित् अजड़ है। देवता, नाग, दैत्य, राक्षस, हाथी, मनुष्य आदिक स्थावर जङ्गमरूप सब वही धारती है। हे रामजी! अपनी चेष्टा से संवित् आपको आप ही बँधाती है। जैसे कुसवारी आप ही आपको गृह में बँधाती है तैसे ही संवित् आपको बँधाती है। जब अपनी ओर आती है तब आप ही आपको प्राप्त होती है। हे रामजी! जगत् जाग्रत् रूपी समुद्र है उसमें संवित्‌रूपी जल है जिससे सब स्थान पूर्ण हो गये हैं। अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आकाश, पर्वत, नदी आदिक सब संवित्‌रूपी जल की लहरें हैं इससे सब जगत् संवित्‌मात्र है और उसमें द्वैतकलना का अभाव है। यह सम्यक्ज्ञान है। इस संवित् का बीज चिन्मात्र है उसमें द्वैतकलना का अभाव है। यह सम्यक्ज्ञान है इस संवित् का बीज चिन्मात्र है और चिन्मात्रसत्ता से संवित् उदय हुआ है—जैसे प्रकाश से ज्योति

उदय होती है। इस सत्ता के दो रूप हैं–एक रूप नाना प्रकार हो भासता है और दूसरा एक ही रूप हैं। घट, पट, तत्त्व आदिक एक सत्ता के नाना प्रकार विभाग स्थित हैं और विभाग से रहित एक सत्ता स्थित है-वह सत्तासमान अद्वैतरूप परमार्थ है। हे रामजी ! विषय को त्यागकर जो चिन्मात्र है वह अलेप एक रूप है सो ही महासत्ता है। उसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं। नाना आकार भी वह सत्ता कभी नहीं धारती। यह संवेदन से हुए हैं इस कारण अवस्तुरूप हैं। एक रूप जो परम सत्ता निर्मल अविनाशी है वह न कभी नष्ट होता है और न विस्मरण होता है, क्योंकि अनुभवरूप है। हे रामजी ! एक कालसत्ता है और एक आकाशसत्ता है सो यह सत्ता अवस्तुरूप है। इस विभागसत्ता को त्यागकर चिन्मात्रसत्ता के परायण हो। कालसत्ता और आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम है परन्तु वास्तव नहीं। जहाँ नाना विभागकलना, आकार और नाना कारण हैं वह पवित्रकर्त्ता पावन नहीं। इसी से कहा है कि आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं और सत्तासमान जो संवित्मात्र है वह सबका बीज है उसी से सबकी प्रवृत्ति होती है। हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ हैं उनकी कलना सत्तासमान में हुई है। उस अनन्त, अनादि बीजरूप परमपद का बीज और कोई नहीं। जब उसका भान हो तब यह निर्विकार होकर स्थित हो। जीवन्मुक्त उसी को कहते हैं जिसे दृश्य की भावना कुछ न फुरे। जैसे बालक मूक और अभिमान से रहित होता है तैसे ही ज्ञान से जीव निर्वासनिक हो तब जड़ता से मुक्त होता है और सर्व आत्मभाव को प्राप्त होता है। जिस संवित् में दृश्य का स्पर्श होता है वह संवित् जड़ है, क्योंकि शुद्धस्वरूप में मलीन का स्पर्श होता है। जो संवित् द्वैत फुरने से रहित है वह शुद्ध और अजड़ है और द्वैतभाव को ग्रहण करती है वह स्वरूप की ओर से जड़ है। हे रामजी ! जिसकी स्वरूप की ओर स्थित हुई है और दृश्यभाव का लेप नहीं होता है वह सर्ववासना को त्यागकर निर्विकल्प समाधि में लगता है। जैसे आकाश में नीलता स्वाभाविक वर्तती है तैसे ही योगी आनन्द में वर्तती है और निस्संवेदन संवित् में प्रविष्ट होकर वही रूप हो जाता है जिसके मन की

वृत्ति वहाँ स्थिर हो जाती है और बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगन्ध लेते, देखते, सुनते और सब इन्द्रियों की क्रिया करते भी मन स्थिर रहता है दृश्य का अभिमान नहीं फुरता वह अजड़ कहाता है और संवेदन से रहित सुखी होता है। हे रामजी ! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती है परन्तु पीछे सब दुःख का नाशकर्ता होती है, इससे इसी दृष्टि का आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्र है उससे तर जाओ। जैसे वट का बीज सूक्ष्म होता है पर विस्तार को पाकर आकाश को स्पर्श करने लगता है तैसे ही सूक्ष्म संवेदन से जब संकल्प फैलता है तब वही बड़े जगत् के विस्तार को धारता है और जन्म के जाल को प्राप्त होता है। बीजरूप से आपही अपने को जन्मों में डालता और फिर फिर मोह में गिरता है। जब संवित् अपनी ओर होती है तब मोक्ष को प्राप्त होता है और जैसी भावना स्वरूप में दृढ़ होती है वही सिद्ध होती है। जैसे नटुआ अनेक स्वाँग को धारता है तैसे ही संवित् अनेक आकारों को धारती है। जब नट भूमिका को त्यागता है तब अपने स्वरूप में प्राप्त होता है। हे रामजी ! संवित्रूप नटकी जगत्रूप धारकर नृत्य करती है। जो दुःखरूप संसार-समुद्र में न गिरे सो सत्ता सब कारणों की कारण है और उसका कारण कोई नहीं और वही सब सारों का सार है उसका सार कोई नहीं। उसी चेतनरूपी बड़े दर्पण में समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होता है। जैसे ताल में किनारे के वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं तैसे ही सब वस्तु चिद्दर्पण में प्रति-बिम्बित होती है। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ हैं वे सब आत्मसत्ता से सिद्ध होते हैं और उसी अनुभव में सबका अनुभव होता है। जैसे षट्रसों का स्वाद जिह्वा से सिद्ध होता तैसे ही सब पदार्थ चिदाकाश के आश्रय सिद्ध होते हैं। जगत्गण उसी से उपजते हैं, उसी में वर्तते और बढ़ते हैं, उसी में स्थित दिखते हैं और उसी में लय होते हैं। सबका अधिष्ठान वही सत्ता है और गुरु का गुरु, लघु की लघुता, स्थूल की स्थूलता, सूक्ष्म की सूक्ष्मता, द्रव्यों का द्रव्य, कष्टों में कष्ट, बड़े में बड़ाई, तेज का तेज, तम का तम, वस्तु की वस्तु, द्रष्टा का द्रष्टा, किंचन में किंचन, निष्किंचन में निष्किंचन, तत्त्वों का तत्त्व, असत्य का असत्य, सत्य का सत्य, आश्रय में आश्रय और

अनाश्रम में अनाश्रम वही है। हे रामजी ! ऐसी जो परमपावन सत्ता है उसमें प्रयत्न करके स्थित हो, फिर जैसे इच्छा हो तैसे करो। वह आत्मतत्त्व निर्मल, अजर, अमर, शान्तरूप और चित्त के क्षोभ से रहित है, उसमें भव (संसार) से मुक्ति के निमित्त स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे स्मृतिबीजविचारो नाम सप्तशीतितमस्सर्गः ॥ ८७ ॥

रामजी ने पूछा, हे महानन्द के देनेवाले ! यह जो बीजों का बीज आपने कहा है सो किस प्रकार प्राप्त हो ? जिस प्रकार उस पद की शीघ्र प्राप्ति हो वह उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इन सबके बीज का जो उत्तर दिया है उस उपाय से परमपद की प्राप्ति होती है। अब और भी जो तुमने पूछा है वह सुनो। सत्तासमान में स्थित होने के निमित्त यत्न कर्त्तव्य है। जो कुछ संसार की वासना है बल करके उसको त्याग करिये और शुद्ध आत्मा में तीव्र अभ्यास करिये तब शीघ्र ही अविघ्न आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होगी। हे तत्त्ववेत्ता ! उस पद में एक क्षण भी स्थित होगे तो अक्षयभाव को प्राप्त होगे। हे रामजी ! सत्तासमान संवित्-मात्र तत्त्व है उसमें स्थित होके जो इच्छा हो सो करो तब उसके सिवा और कुछ सिद्ध न होगा—सब वही भासेगा। ऐसा जो अनुभवतत्त्व है वह तुम्हारा स्वरूप है उसके ध्यान में स्थित हुए तुमको कुछ खेद न होगा। संवेदन के साथ ऐसा ध्यान नहीं होता और वह ऊँचा पद है पुरुष प्रयत्न से उस पद को प्राप्त हो। हे रामजी ! केवल संवेदन के साथ ध्यान नहीं होता क्योंकि सर्वत्रसम्भव संवित् तत्त्व है। संवित् सर्वदा सर्व-काल सहायक होती है और सबसे मिली हुई है जो कुछ चितवे जो इच्छित हो, जो कुछ करे सो सब संवित् से सिद्ध होता है। हे रामजी ! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है पर उसका भान नहीं होता और जो कुछ भासता है वही अविद्या आवरण है सो इसका दुःख होता है। स्वरूप के प्रसाद से जो दृश्य की वासना करता है उसकी दृढ़ता से अन्तःकरण दुःख पाता है। जब यत्न करके वासना का त्याग करिये तब मन और शरीर के दुःख सब नाश हो जायेंगे। पूर्व जो मोह दृढ़ हो रहा है—जैसे मेरु को मूल

से उखाड़ना कठिन है तैसे ही वासना का त्याग कठिन है। वह वासना मन से होती है, जब तक मन क्षय नहीं होता तब तक वासना भी क्षय नहीं होती। तत्त्वज्ञान बिना मन का नाश नहीं होता। वासना और मन का आवरण एक साथ दूर होता है। यह परस्पर कारणरूप है। इससे हे रामजी ! तुम पुरुषप्रयत्न करके मन के संकल्प विकल्प को निवृत्त करो और अभ्यास और विचार करके विवेक का उपाय करो और भोगों की वासना दूर से त्यागो–इसी से तुम शान्तिमान होगे। इन तीनों के सम अभ्यास से तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय का बारम्बार अभ्यास करो। जबतक इनको न साधोगे तबतक अनेक उपायों से भी शान्ति को न प्राप्त होगे। हे रामजी ! वासना क्षय हो और मनोनाश और तत्त्वज्ञान से वासना क्षय न करे तो कार्य सिद्ध नहीं होता और जो मनोनाश करे और तत्त्वज्ञान से वासना क्षय न करे तब भी कल्याण न होगा और तत्त्वज्ञान का विचार करे और वासना क्षय न हो तो भी कुशल न होगी। जब इन तीनों का सम अभ्यास हो तब फल की प्राप्ति हो। हे रामजी ! एक के सेवन से सिद्धता नहीं प्राप्त होती–जैसे मन्त्र को कोई प्रतिबन्ध लय न करे तो मन्त्र फलदायक नहीं होता और एक-एक चरण पढ़े तो भी फलदायक नहीं होता जबतक सब मन्त्र संध्यादिक एक ठौर नहीं होते तबतक मन्त्र नहीं फुरते, तैसे ही अकेले से कार्य सिद्ध नहीं होता। जब चिरकाल इनको इकट्ठा सेवे तब कार्य हो। जैसे सेनासंयुक्त बड़ा शत्रु हो और उसके मारने को एक शूरमा जावे तो शत्रु को मार नहीं सकता और यदि इकट्ठे सेना पर जा पड़ें तब उसको जीत लेवें, तैसे ही संसाररूपी शत्रु के नाश के लिये जब तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय का इकट्ठा अभ्यास हो तब संसाररूपी शत्रु का नाश हो। हे रामजी ! जब तीनों का अभ्यास करोगे तब हृदय की 'अहं' 'मम' ग्रन्थि टूट पड़ेगी। अनेक जन्मों की संसारसत्यता जो इसके हृदय में स्थित हो रही है सो अभ्यासयोग से टूट पड़ेगी इससे चलते, बैठते, खाते, पीते, सुनते, सूँघते, स्पर्श करते और जागते इन तीनों का अभ्यास करो। हे रामजी ! वासना के त्याग से प्राणस्पन्द रोका जाता है। जब प्राणों

का स्पन्द रोका तब चित्त अचित्त हो जाता है। एक प्राणों के रोकने से ही वासना क्षय हो जाती है, तब भी चित्त अचित्त हो जाता है। आत्म-योग से अथवा वासना के त्याग से आत्मतत्त्व प्रकाशेगा। इनमें जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो, चाहे प्राणों को योग से रोको और चाहे वासना का त्याग करो। प्राणायाम तब होता है जब गुरु की दी हुई युक्ति स्थित होती है और आसन और आहार के संयम से प्राणों का स्पन्द रोका जाता है। जब सम्यक्ज्ञान से जगत् को अवास्तव जानता है तैसे वासना नहीं प्रवर्तती। जो जगत् के आदि और अन्त में स्थित है उसमें मन जब स्थित होता है तब वासना नहीं उपजती। हे रामजी! जब व्यवहार में निःसंग और संसार की भावना से विवर्जित होता है और शरीर में असत् बुद्धि होती है तब भी वासना नहीं प्रवर्तती और जब विचार करके वासना क्षय हो तब चित्त भी नष्ट हो जावेगा जैसे वायु के ठहरने से धूल नहीं उड़ती तैसे ही वासना के क्षय हुए चित्त नहीं उपजता। जो प्राणस्पन्द है वही चित्तस्पन्द है। जब वासना फुरती है तब जगत्भ्रम उपजता है। जैसे पवन से धूल उपजती है तैसे ही चित्त से वासना उपजती है जब प्राणस्पन्द ठहरता है तब चित्त भी ठहर जाता है, इससे यत्न करके प्राणस्पन्द अथवा वासना के जीतने का अभ्यास करो तब शान्तिमान् होगे और जो यह उपाय न करो और दूसरे यत्न से चित्त वश करने का उपाय करोगे तो बहुत काल में आत्म-पद को पावोगे। हे रामजी! इस युक्ति के बिना मन के जीतने का और कोई उपाय नहीं है। जैसे मतवाले हाथी को अंकुश बिना वश करने का उपाय और कोई नहीं तैसे ही मन भी युक्ति बिना वश नहीं होता। वह युक्ति यह है कि सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार करना। इस उपाय से तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय और प्राणों का स्पन्द रोकना होता है। चित्त वश करने की यह परमयुक्ति है—इससे चित्त शीघ्र ही जीता जाता है। जो इन उपायों का त्यागकर हठ से मन वश किया चाहते हैं वे क्या करते हैं? जैसे तम के नाश करने को दीपक जलावे तो नाश हो जाता है और शास्त्रों से तम को काटे तो तम नाश न

होवेगा तैसे ही और उपायों से चित्त वश न होगा । इस बिना जो और उपाय करते हैं वे मूर्ख हैं । जैसे मतवाला हाथी कमल की ताँत से बाँधा नहीं जाता और जो कोई इससे बाँधने लगे तो महामूर्ख है, तैसे ही मन के जीतने को और प्रकार जो हठ करते हैं सो महामूढ़ हैं । और उपाय करके क्लेश प्राप्त होगा आत्मसुख प्राप्त न होगा । जैसे दुर्भागी जीवों को कहीं सुख नहीं होता है । हे रामजी ! जिसने तीर्थ, दान, तप और देवताओं की पूजा-यह चारों साधन किये हैं और मन जीतने का उपाय नहीं किया वह मृग की नाईं भ्रमता फिरता है और पहाड़ों की कन्दरा में फल और पत्र खाता फिरता है, क्योंकि उसने मन का नाश नहीं किया इससे आत्मपद को नहीं पाया वह पशुओं के समान है, जैसे और पशु होते हैं तैसे ही वह भी है । हे रामजी ! जिस पुरुष ने मन को वश नहीं किया उसको शान्ति नहीं होती । जैसे कोमल अङ्गवाला मृग ग्राम में जाने से शान्ति पाता और जैसे जल में पड़ा तृण नदी के वेग से भटककर कष्टवान् होता है तैसे ही वह पुरुष कर्म करता है और मन को स्थित किये विना कष्ट पाता है । कभी दुःख से जलता है और कभी कर्मों के वश से स्वर्ग को प्राप्त होता है पर वह भी नष्ट हो जाते हैं । जैसे जल में तरङ्ग उछलते हैं, कभी अधः को जाते और कभी ऊर्ध्व को जाते हैं तैसे ही कर्मों के वश से जीव स्वर्ग नरक में भ्रमते हैं । इससे ऐसी दृष्टि का त्याग करके शुद्ध संवित्मात्र का आश्रय करे और वीतराग होकर स्थित हो । हे रामजी ! जगत् में ज्ञानवान् ही सुखी है और जीता भी वही है, और सब दुःखी और मृतक समान हैं । और बली भी ज्ञानवान् ही है जो मोहरूपी शत्रु को मारकर संसारसमुद्र के पार होता है और सब निर्बल हैं । इससे तुम भी ज्ञानवान् हो संवेदन रहित जो संवित्मात्र तत्त्व है उसमें स्थित हो वह एक है और सबके आदि, सबसे उत्तम, कलना से रहित और सबमें स्थित है तो कर्त्ता हुए भी अकर्त्ता होगे और परब्रह्म उदय होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे अष्टाशीतितमस्सर्गः ॥ ८८ ॥

—:o:—

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस पुरुष ने आत्मविचार कर अपना चित्त अल्प भी निग्रह किया है वह सम्पूर्ण फल को प्राप्त होगा और उसी का जन्म सफल होगा । हे रामजी ! जिस चित्त में विचाररूपी कण का उदय हुआ है वह अभ्यास से बड़े विस्तार को पावेगा । हृदय में जो वैराग पूर्वक विचार उपजता है तो वह बढ़ता जाता है और अविद्या रूपी अवगुणों को काट डालेगा और सब शुभगुण आन उसमें आलय करेंगे—जैसे जल से पूर्ण हुए ताल का सब पक्षी आन आश्रय करते हैं । हे रामजी ! जिसको सम्यक्ज्ञान प्राप्त होता है और निर्मल बोध से यथादर्शन होता है उसको इन्द्रियाँ चला नहीं सकतीं । जबतक स्वरूप का प्रमाद होता है तबतक आधि-व्याधि दुःख होते हैं और जब स्वरूप में स्थित होती है तब शरीर और मन के दुःख वश नहीं कर सकते—जैसे बिजली को कोई ग्रहण नहीं कर सकता, तैसे पुष्टिकर मेघों को कोई पकड़ नहीं सकता, जैसे आकाश के चन्द्रमा को मुष्टि में कोई नहीं पकड़ सकता और मूढ़ स्त्री चन्द्रमा को मोह नहीं सकती, तैसे ही ज्ञानवान् को कोई दुःख वश नहीं कर सकता । हे रामजी ! जो हाथी मद से मत्त है और जिसके मस्तक से मद झरता है और भँवरे उसके आगे शब्द करते हैं उसको मच्छरों के प्रहार और स्त्री के श्वास नहीं छेद सकते, तैसे ही ज्ञानवान् को विषयों के रागद्वेष नहीं चला सकते । जिस हाथी के मस्तक से मोती निकलता है ऐसे बलवान् हस्ती को नखों से विदारनेवाले सिंह को हरिण नहीं मार सकता, तैसे ही ज्ञानवान् को दुःख नहीं चला सकता जिसके फूत्कार से वन के वृक्ष जल जाते हैं ऐसे सर्प को दर्दुर नहीं ग्रास कर सकते, तैसे ही ज्ञानवान् को रागद्वेष नहीं चला सकते । जैसे राज-सिंहासन पर बैठे राजा को तस्कर दुःख दे नहीं सकते तैसे ही जो ज्ञानी स्वरूप में स्थित है उसको इन्द्रियों के विषय दुःख नहीं दे सकते । जो विचार से रहित देहाभिमानी हैं और आत्मतत्त्व को नहीं प्राप्त हुए उनको विषय उड़ा ले जाते हैं—जैसे सूखे पत्र को पवन उड़ा ले जाता है—और ज्ञानवान् को नहीं चला सकते । जैसे पर्वत मन्द पवन से चलायमान नहीं होता, तैसे ही ज्ञानवान् सुख दुःख में चलायमान नहीं होता और

जो विचार से रहित हैं वह जगत् को सत् मानता है। सांसारिक पदार्थों में रत मनुष्य गुरु और शास्त्रों के मार्ग से विमुख है और मूढ़ होकर खाने पीने में सावधान है वह विचार से शून्य व मृतक समान है। उसको यह विचार कर्तव्य है कि 'मैं कौन हूँ' 'यह जगत् क्या है' 'कैसे उत्पन्न हुआ है' और 'कैसे निवृत्त होगा'। इस प्रकार विचारकर सन्तों के संग और अध्यात्मशास्त्र के विचार से जो पुरुष दृश्यभाव को त्यागकर आत्मतत्त्व में स्थित होता है वह परमपद पाता है। जैसे दीपक के प्रकाश से पदार्थ पाया जाता है, तैसे ही विचार से आत्मतत्त्व पाया जाता है। हे रामजी! जिसको शास्त्रविचार से आत्मतत्त्व का बोध होता है वह ज्ञानी कहाता है और वह ज्ञान ज्ञेय के साथ अभिन्नरूप है। अध्यात्मविद्या के विचार करके आत्मज्ञान प्राप्त होता है। जैसे दूध से मथकर मक्खन निकाला जाता है, तैसे ही विचार से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञेय जो भीतर है सोई परब्रह्मस्वरूप है और सत्य है पर असत्य की नाईं होकर स्थित हैं। ज्ञानवान् उसको पाकर तृप्त होता है और जीवन्मुक्त होकर अपने आपमें प्रकाशता है। जैसे चक्रवर्ती राज्य से आनन्द और तृप्ति होती है तैसे ही ज्ञानवान् ब्रह्मानन्द में इन्द्रियों की इच्छा से रहित शोभता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं होता। सुन्दर राग, तन्त्री के शब्द, स्त्रियों के गाने और कोकिलापक्षी और गन्धर्व गन्धर्वी आदि के जो गायन हैं उनमें वह आसक्त नहीं होता। अगर, चन्दन, मन्दार कल्पवृक्ष के सुन्दर फूलों की सुगन्ध, अप्सरा और नागकन्याओं की नाईं सुन्दर स्त्रियों का स्पर्श करने और हीरे, मणि और भूषण और नाना प्रकार के वस्त्रों में वह बन्धवान् नहीं होता। जैसे चन्द्रमा सुन्दर और शीतल है परन्तु सूर्यमुखी कमलों को विकाश नहीं कर सकता तैसे ही सुन्दर स्पर्श ज्ञानी के चित्त को हर्षवान् नहीं करता। जैसे मरुस्थल में हंस प्रसन्न नहीं होता तैसे ज्ञानवान् स्पर्श से प्रसन्न नहीं होता और रसादिक में भी बन्धवान् नहीं होता। दूध, दही, घृतादिक रस, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य, यह चारों प्रकार के भोजन और कटु, तीक्ष्ण, मीठा, खारा आदि जितने रस हैं इनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं

करते और किसी में बन्धवान् नहीं होते । वे आत्मबोध से नित्य तृप्त हैं और किसी भोग की इच्छा नहीं करते जैसे ब्राह्मण मुर्गी के मांस के खाने की इच्छा नहीं करते तैसे ही ज्ञानवान् उर्वशी, रम्भा मेनका आदि अप्सराओं की इच्छा नहीं करते और चन्दन, अगर, कस्तूरी, मन्दार आदि वृक्षों के फूलों की सुगन्ध की इच्छा नहीं करते । जैसे मछली मरुस्थल की इच्छा नहीं करती तैसे ही ज्ञानवान् सुगन्ध की इच्छा नहीं करते और रूप की इच्छा भी नहीं करते । सुन्दर स्त्रियाँ बाग, तालाब, नदियाँ इत्यादिक जो रूपवान् पदार्थ हैं तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते । जैसे चन्द्रमा बादलों की इच्छा नहीं करते तैसे ही ज्ञानवान् रूप की इच्छा नहीं करते । और की क्या बात है, इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, समुद्र, कैलास, मन्दराचल, रत्न, मणि और कञ्चन ये जो बड़े-बड़े पदार्थ हैं उनकी भी वे इच्छा नहीं करते । जैसे राजा नीच पदार्थों की इच्छा नहीं करता तैसे ही ज्ञानवान् पदार्थों की इच्छा नहीं करते । समुद्र और सिंह के गर्जने और बिजली के कड़कने का जो भयानक शब्द है उसको भी सुनकर वह भयवान् नहीं होते—जैसे शूरमा धनुष का शब्द सुनकर भयवान् नहीं होता । ज्ञानवान् मतवाले हाथी, वैताल, पिशाच और इन्द्र के वज्र के शब्द सुनते और देखते हुए भी कम्पाय मान नहीं होते और सत्स्वरूप की स्थिति से कभी चलायमान नहीं होते । शरीर को जो आरे से काटिये, खड्ग से कणकण करिये और बाणों से वेधिये तो भी कम्पायमान नहीं होते । उसको रागद्वेष भी किसी में नहीं होता, यदि शरीर पर एक ओर जलता अङ्गारा रखिये और एक ओर फूलों की माला रखिये तो भी वह हर्ष-शोकवान् नहीं होता । एक ओर खड्गधारावत् तीक्ष्णस्थान हो और एक ओर पुष्पशय्या हो तो उसको दोनों तुल्य हैं । एक ओर शीतल स्थान हो और एक ओर गरम शिला हो तो दोनों उसको तुल्य हैं । एक ओर मारनेवाला विष हो और दूसरी ओर जियानेवाला अमृत हो तो उसको दोनों तुल्य हैं । हे रामजी ! चाहे सम्पदा प्राप्त हो, चाहे आपदा हो, चाहे मृत्यु हो, चाहे उत्साह हो इनमें व्यवहार करता भी वह दृष्टि आता है परन्तु हृदय से हर्ष और

शोक नहीं। उसका मन ज्ञानसंयुक्त है और सदा सम रहता है। हे रामजी! लोहे के कुल्हाड़े से उसका मांस तोड़िये, नरक में डालिये और ऊपर शस्त्रों की वर्षा हो तो भी ज्ञानवान् भय न पावेगा और न उद्वेगवान् और न व्याकुल होगा, न दीन होगा। ज्ञानवान् इनमें सदा समदृष्टि होकर पहाड़ की नाईं धैर्यवान् स्थित रहता है। हे रामजी! ज्ञानवान् रागद्वेष से रहित है और देह अभिमान से मुक्त हुआ है। उसका शरीर अग्नि में पड़े, वा खाईं में गिरे अथवा स्वर्ग में हो उसको दोनों तुल्य हैं और वह हर्ष शोक से रहित है। हे रामजी! जिसके स्वरूप में दृष्टि स्थित हुई है वह चलायमान नहीं होता—जैसे मेरु स्थित है—उसको पवित्र पदार्थ हो अथवा अपवित्र पदार्थ हो, पथ्य हो व कुपथ्य हो, विष हो अथवा अमृत हो, मीठा, खट्टा, सलोना, कड़ुवा, दूध, दही, घृत, रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्थि, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य चोष्य भोजन हैं वह सम हैं। न इष्ट में वह रागवान् होता है और न अनिष्ट में द्वेषवान् है। यदि एक पुरुष प्राणों के निकालने को सम्मुख आवे और दूसरा प्राणों की रक्षा निमित्त आवे तो दोनों को वह आत्म-स्वरूप, शान्तमन और मधुररूप देखता है और रागद्वेष से रहित है। रमणीय अरमणीय पदार्थों को वह सम देखता है क्योंकि उसने संसार की आस्था त्याग दी है। बोधस्वरूप में वह निश्चित है, चित्त नीरागपद को प्राप्त हुआ है और सब जगत् उसको आत्मस्वरूप भासता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध पञ्चविषयों के भोग अपना अवसर नहीं पाते। जैसे दर्पण देखने से प्रतिबिम्ब भासता है, दर्पण की सुरत रहती तैसे ही वह विषयों में आत्मा देखता है, विषयों की सुरत नहीं रहती अज्ञानी को इन्द्रियाँ ग्रास लेती हैं—जैसे तृणों को मृग ग्रास लेता है। जिसने आत्मपद में विश्रान्ति पाई है उसको इन्द्रियाँ ग्रास नहीं सकतीं। हे रामजी! अज्ञानरूपी समुद्र में जो पड़ा है और वासनारूपी लहरों से मिलकर उछलता और गिरता है, उसको आशारूपी तेंदुआ ग्रास कर लेता है और हाय हाय करता है, शान्ति नहीं पाता। जो विचार करके आत्मपद को प्राप्त हुआ है वह विश्रान्ति को पा चलायमान

नहीं होता । जैसे सुमेरु पर्वत जल के समूह से चलायमान नहीं होता तैसे ही वह संकल्प विकल्प में चलायमान नहीं होता । जिसकी आत्मपद में विश्रान्ति हुई है वह उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है। हे रामजी ! उसको यह जगत् ज्ञानमात्र भासता है और वह उसे संवित्मात्र जानकर विचार करता है, न किसी का ग्रहण है और न त्याग करता है। इससे भ्रान्ति को त्यागकर संवित्मात्र ही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है और किसका ग्रहण करता है ? जो आदि में भी न हो, अन्त में भी न रहे और मध्य में भासे उसे भ्रममात्र जानिये । इस प्रकार जानकर, भाव अभाव की बुद्धि को त्यागकर और निस्संवेदन रूप होकर संसारसमुद्र से तर जाओ और मन, बुद्धि और इन्द्रियों से कर्म करो चाहे न करो, निस्सङ्ग होगे तब तुमको लेप न होगा । हे रामजी ! जिसका मन अभिमान से रहित हुआ है वह कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता । जैसे मन और ठौर गया होता है तो विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थों को प्रस्तुत होते भी नहीं जानता, तैसे ही जिसका मन आत्मपद में स्थित हुआ है उसको सुख दुःख कर्म नहीं लगता जो पुरुष अभिमान से रहित है वह कर्मों में सुख दुःख भोगता दृष्टि आता है परन्तु वह उसको स्पर्श नहीं करते । देखो, यह बालक भी जानते हैं कि मन और ठौर जाता है तो सुनता भी नहीं सुनता, तैसे ही वह पुरुष करता भी नहीं करता । हे रामजी ! जिसका मन असंग हुआ है वह देखता है परन्तु नहीं देखता, सुनता है परन्तु नहीं सुनता, स्पर्श करता है परन्तु नहीं करता, सूँघता और रस लेता है परन्तु नहीं लेता इत्यादिक जो कुछ चेष्टा हैं सो कर्त्ता भी वह अकर्त्ता है और उसका चित्त आत्मपद में लीन हुआ है । जैसे कोई पुरुष देशान्तर को जाता है तो वह उस देश में व्यवहार कर्म करता है परन्तु उसका चित्त गृह में रहता है तैसे ही ज्ञानवान् का चित्त आत्मपद में रहता है। यह बात मूर्ख भी जानता है । जैसा वेग मन में तीव्र होता है उसकी सिद्धि होती है और वही भासता है और नहीं भासता । हे रामजी ! सब अनर्थों का कारण संग है, संसार के संग से ही जन्म-मरण के बन्धन को प्राप्त होता है, इससे सब

अनथा और संसार का कारण संग है। सब इच्छाओं का कारण संग है और सब आपदाओं का कारण संग है, संग के त्याग से मोक्षरूप और अजन्मा होता है। इससे संग को त्यागकर और जीवन्मुक्त होकर विचरो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप सर्वसंशयरूपी कुहिरे के नाशकर्त्ता शरत्काल के पवन हैं संग किसको कहते हैं, यह संक्षेप से मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भाव-अभाव जो पदार्थ हैं वह हर्ष और शोक के देनेवाले हैं। जिस मलिन वासना से यह प्राप्त होते हैं वही वासना संग कहाता है। हे रामजी! देह में जो अहंबुद्धि होती है और संसार की जो सत्य प्रतीति है तो उस संसार के इष्ट अनिष्ट को रागद्वेष सहित ग्रहण करता है, ऐसी मलिन वासना संग कहाती है और जीवन्मुक्त की वासना हर्ष शोक से रहित शुद्ध होती है—सो निस्संग कहाता है। उसकी वासनाएँ जन्म मरण का कारण नहीं होती। हे रामजी! जिस पुरुष को देह में अभिमान नहीं होता और जिसकी स्वरूप में स्थिति है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता, क्योंकि उसका शुद्ध वासना है और जो कर्त्ता है सो बन्धन का कारण नहीं होता। जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही ज्ञानवान् की वासना जन्म-मरण का कारण नहीं होती और जिसकी वृत्ति जगत् के पदार्थों में स्थित है और रागद्वेष से ग्रहण त्याग करता है ऐसी मलिन वासना जन्मों का कारण है इस वासना को त्यागकर जब तुम स्थित होगे तब तुम करते हुए भी निर्लेप रहोगे और हर्ष शोकादि विकारों से जब तुम रहित होगे तब वीतराग और भय और क्रोध से असंग होगे। हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ है वह जीवन्मुक्त हुआ है। इससे तुम भी वीतराग होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो। जीवन्मुक्त पुरुष इन्द्रियों के ग्राम को निग्रह करके स्थित होता है और मान, मद, वैर को त्यागकर सन्ताप से रहित स्थित होता है। वह सब आत्मा जानकर कर्म करता है परन्तु व्यवहार बुद्धि से रहित असंग होकर कर्म करता है। वह कर्त्ता भी अकर्त्ता है उसको आपदा अथवा सम्पदा प्राप्त हो अपने स्वभाव को नहीं त्यागता, जैसे क्षीरसमुद्र ने मन्दराचल पर्वत को पाकर शुक्लता को नहीं त्यागा,

तैसे ही जीवन्मुक्त अपने स्वभाव को नहीं त्यागते । हे रामजी ! आपदा प्राप्त हो अथवा चक्रवर्ती राज्य मिले, सर्प का शरीर प्राप्त हो अथवा इन्द्र का शरीर प्राप्त हो, इन सबमें वह सम और आत्मभाव से स्थित होता है और हर्ष शोक को नहीं प्राप्त होता । वह सब आरम्भों को त्यागकर नानात्वभाव से रहित स्थित होता है । विचार करके जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो तैसे ही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टि को पाकर आत्मतत्त्व को देखो तब विगतज्वर होगे और आत्मपद को पाकर फिर जन्म-मरण के बन्धन में न आवोगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे आर्षे देवदूतोक्तमहारामायण मोक्षोपायनाम एकोननवतितमस्सर्गः ॥ ८९ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे पञ्चमं समाप्तम् ॥

श्रीमती स्मिता पटवर्धन द्वारा
क्लासिक आफ़सेट प्रिंटिंग, जे.एन. रोड, से मुद्रित